।। श्रीहरिः ।।

1120▲

सिद्धान्त एवं रहस्यकी बातें

जयदयाल गोयन्दका

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

1120

॥ श्रीहरिः ॥

सिद्धान्त एवं रहस्यकी बातें

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

जयदयाल गोयन्दका

निवेदन

परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका जिन्होंने गीताप्रेसकी स्थापना की थी, पारमार्थिक जगत्‌की एक महान् विभूति हुए हैं। उनपर भगवान्‌ने विशेष कृपा करके उन्हें प्रकट होकर स्वेच्छासे चतुर्भुजरूपसे दर्शन दिये। भगवान् प्रकट हुए तब श्रीगोयन्दकाजीके मनमें फुरणा हुई कि भगवान्‌ने ऐसी महान् कृपा किस हेतु की। उनको प्रेरणा हुई कि भगवान् चाहते हैं कि मेरी निष्काम-भक्तिका प्रचार हो। इस उद्देश्यकी पूर्तिहेतु श्रीगोयन्दकाजी द्वारा बड़ा भारी प्रयास हुआ। उनका कहना था कि पारमार्थिक उन्नतिमें चार चीजें विशेष लाभप्रद हैं—सत्संग, ध्यान, नामजप, भजनादि तथा निष्काम सेवा—इसमें भी उनका सबसे ज्यादा जोर सत्संगपर था। इसी उद्देश्यसे उन्हें कभी सत्संग कराते थकावट नहीं मालूम देती थी, बल्कि वे बड़े उत्साहसे घंटों-घंटों प्रवचन करते रहते थे।

गीताभवन स्वर्गाश्रममें लगभग चार महीने सत्संगका समय रहता था। वहाँका वातावरण बड़ा सात्त्विक है, इसलिये वहाँपर दिये गये प्रवचन पाठकोंको विशेष लाभप्रद होंगे। इस भावसे उनके प्रवचनोंको पुस्तकाकार प्रकाशित करनेका विचार हुआ है। किस स्थलपर, किस दिनांकको उनका यह प्रवचन हुआ यह लेखके नीचे दिया गया है। कुछ छोटे प्रवचन एक ही विषयके होनेसे उन्हें एक ही लेखमें संग्रहीत कर दिया गया है। इन प्रवचनोंमें कई ऐसी प्रेरणात्मक बातें हैं जो मनुष्यको परमार्थ-मार्गमें बहुत तेजीसे अग्रसर करती हैं, उदाहरणके तौरपर बताया जाता है कि 'मैंपन' (अहंता)-को पकड़नेमें जितना अभ्यास तथा समय लगा है, उतना समय और अभ्यास इसके छोड़नेमें नहीं लगता। जैसे मकानको बनानेमें बहुत समय लगता है, परन्तु उसके तोड़नेमें बहुत कम समय लगता है। ऐसी बहुत-सी अमूल्य बातें इन प्रवचनोंमें आयी हैं।

हमें आशा है कि पाठकगण इन प्रवचनोंको एकाग्र मनसे पढ़ेंगे एवं मनन करेंगे। यह निश्चित कहा जा सकता है कि इनसे हमें विशेष आध्यात्मिक लाभ होगा।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

□□

स्वाभाविक ध्यानकी महत्ता

मेरे मनमें यही बात आती है कि विवेक और वैराग्यपूर्वक परमात्माका ध्यान हो। यहाँपर स्वाभाविक ही संसारसे वैराग्य होकर उपरामता और बहुत भारी शान्ति परिपूर्ण हो रही है। ध्यानमें उत्तरोत्तर मग्न रहे—यहाँ स्वाभाविक ध्यान हो रहा है। ध्यान स्वतः होना चाहिये। ध्यान करे नहीं, स्वाभाविक ही हो। समय और स्थानके प्रभावसे मानो शान्तिकी बाढ़ आ गयी—आनन्दका ठिकाना नहीं है। स्वाभाविक ही शान्ति हो रही है, जितनी शीतलता चाहे उतनी शीतलता है, स्वाभाविक ही मधुर-मधुर हवा आ रही है, सात्त्विक, शुद्ध हवा आ रही है। गंध, देश, काल, संग सब सात्त्विक है। परमात्माका ध्यान स्वतः ही हो रहा है। परमात्माके सिवाय और कुछ नहीं, ध्यान स्वतः ही हो रहा है। संसारका चित्र बुलाया हुआ भी नहीं आता। कोई प्रयत्नका काम नहीं, परमात्माका ध्यान आप ही हो। कैसा वातावरण है।

तबियतमें शान्तिकी तरी है। विक्षेपरहित अवस्थामें स्वाभाविक ध्यान हो रहा है। विक्षेपका अभाव होनेसे, परमात्माका ध्यान होनेसे, **'वीतरागविषयं वा चित्तम्'** होनेसे चित्त स्थिर हो जाता है। चित्त स्थिर होनेका चौथा उपाय **'यथाभिमतध्यानाद्वा'** जो अपनेको अभिमत हो उसका ध्यान करनेसे चित्त स्थिर हो जाता है। परमात्मा प्रकट हों चाहे नहीं—निराकार और साकार सब परमात्माका ही रूप है, एक है। जैसे परमाणुरूप जल, बादल, बूँद और ओले धातुसे एक जल ही हैं, वैसे ही निराकार और साकार सब एक है। परमात्मा निराकाररूप, आनन्दमय, रसरूप हैं। वे चाहें उसी रूपमें रहें, आनन्द और रस एक हैं।

प्रवचन—दिनांक १८। ३। १९४७ सायंकाल ६.३० बजे, गंगा किनारे, स्वर्गाश्रम।

मेरे तो यह मनमें आयी कि सबका ध्यान परमात्मामें लग जाय। यह समय स्वाभाविक ही ध्यानका समय है। इस समय गंगाकी गन्ध, गंगाकी रेणुकाका आसन, सायंकालका समय है और सत्संगकी बातें विशेष मदद देती हैं। दूसरोंके ध्यानकी क्रिया भी विशेष मदद देती है। भोजनके पूर्वका काल ध्यानमें मदद देता है। सन्ध्याका समय ध्यानमें मदद देता है। वैराग्य, उपरति ये ध्यानमें मदद देते हैं। संसारकी स्फुरणाका अभाव, आलस्यका अभाव स्वाभाविक ही होता है। ध्यानमें ये ही दो विघ्न हैं—आलस्य और विक्षेप। इन सब बातोंका खयाल करके ध्यानमें खूब मस्त हो जाय। सब संसार ढह जाय, याद करनेपर भी याद नहीं आवे। आकृतिमात्र, स्फुरणामात्रका अभाव करे। ईश्वरमें बार-बार ऐसी-ऐसी वृत्तियाँ हों, बस एक परमात्माके सिवाय दूसरी वस्तु है ही नहीं। शरीर, संसार और अपने-आपको भूल जाय। उपरतिके समय संसारको याद करनेपर भी याद नहीं आये। स्वाभाविक ही कैसी शान्ति, आनन्द और ज्ञानकी बाहुल्यता है। खूब ज्ञानका पुंज है, अज्ञान और अज्ञानका कार्य पासमें नहीं आता। ज्ञानकी इतनी बाहुल्यता है कि रोम-रोममें, शरीरमें, मन, बुद्धिमें ज्ञानकी दीप्ति रह जाय। शरीर और संसारका अत्यन्ताभाव होकर एक ज्ञान ही रह जाय। ईश्वरकी बड़ी भारी दया है। आनन्द-ही-आनन्द है। दूसरी वस्तु है ही नहीं। शरीर और संसारका ज्ञान ही नहीं हो। यदि हो जाय तो एक आनन्दके सिवाय और कुछ नहीं है।

❑❑

महात्माके संगसे लाभ

गीताकी कसौटीके अनुसार महात्माके लक्षण घटावें तो बहुत कम लोग महात्मा उतरेंगे।

महात्माके पास जानेवाला झूठ बोलनेवाला होगा तो वह भी उनके पास कहेगा कि और जगह तो झूठ बोल देते हैं पर क्या आपके पास भी झूठ बोलेंगे ? यह महापुरुषोंका प्रभाव है। समता, प्रेम, दया, ज्ञान, प्रकाश, शान्ति, आनन्दका प्रभाव पड़ता है। आकाशमें स्थित भगवान्‌का प्रभाव पड़ता है और श्रद्धा हो तो अधिक पड़ता है।

ईश्वर या महात्मा हमें याद कर लें तो हमें बड़ा लाभ है। लौकिक व्यवहारमें भी यही बात है कि कोई बड़ा आदमी हमें याद करे तो हमें प्रसन्नता होती है। बड़ा आदमी किसी प्रकार याद करे, लाभ है। दण्ड देनेके लिये याद करे तो भी उनका अनुग्रह ही है। लाभ-ही-लाभ है। अंगदजीने हनुमान्‌जीसे कहा था कि भगवान्‌को समय-समयपर मेरी याद दिलाते रहना। इससे मेरा कल्याण हो जायगा। अंगदका भाव है कि भगवान् मुझे याद करेंगे तो कल्याणमें कोई शंका नहीं है।

महात्मासे किसी प्रकार सम्बन्ध हो जाय तो लाभ-ही-लाभ है। महात्माके दर्शन, स्पर्श, भाषण किसीसे भी सम्बन्ध हो जाय। नाम-उच्चारण किसी प्रकार हो जाय। वैसे ही भगवान्‌में भी कोई भाव हो—दास्यभाव, सख्यभाव, माधुर्यभाव कोई हो। महात्माके संगसे और भगवान्‌में भावसे लाभ है। ईश्वर या महात्मा अपना भार ले लें तो निर्भय हो जाना चाहिये। शरण होनेपर निश्चिन्त हो जाना चाहिये। शरण होनेपर निश्चिन्त नहीं हुआ तो वह शरणका तत्त्व नहीं समझा।

❑❑

प्रवचन—दिनांक १९। ३। १९४७ प्रात:काल ७.३० बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

महात्माओंकी कृतज्ञता

एक आदमी गीताका प्रचार करता है वह एक नम्बर है, दूसरा स्वाध्याय करता है यह दूसरे नम्बरपर है, तीसरा सुनता है यह तीसरे नम्बरपर है। गीता और शास्त्रके अनुसार यह बात है और युक्तिसे भी यही बात मालूम पड़ती है, सुननेवालेके लिये भगवान्ने बताया है—

सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्॥ (गीता १८।७१)

वह भी पापोंसे मुक्त होकर उत्तम कर्म करनेवालोंके श्रेष्ठ लोकोंको प्राप्त होगा। उसके लिये मुक्तितककी गुंजाइश है। पर गीताका प्रचार करनेवालेके लिये भगवान्ने कहा है—

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥

(गीता १८।६९)

उससे बढ़कर मेरा प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योंमें कोई भी नहीं है तथा पृथ्वीभरमें उससे बढ़कर मेरा प्रिय दूसरा कोई भविष्यमें होगा भी नहीं।

गीतामें भगवान्का भजन ध्यान करनेकी बात लिखी है। गीताके संस्कार (१) दूसरोंको धारण करा दे, अर्थ सुना दे (२) अपने स्वाध्याय करे (३) श्रवण करे। दूसरोंको सुनानेमें परिश्रम और लाभ भी ज्यादा है।

प्रश्न—आप कहते हैं मैं ऋणी हूँ, ऋणका क्या तात्पर्य है?

उत्तर—आपकी अध्यात्मविषयमें रुचि है और आप परमात्माकी बात सुनते हैं। आप ऐसा मानते हैं कि सत्संग करनेसे मेरा कल्याण हो जायगा। तुम्हारा उद्धार हो जाय तो मैं ऋणसे मुक्त

प्रवचन—दिनांक १९।३।१९४७, सायंकाल ६ बजे, गंगा किनारे, स्वर्गाश्रम।

हो जाऊँ। मुक्तिका इकरार मैं नहीं करता, भगवान् चाहें तो मुक्त कर दें और वे ही मुझे ऋणसे मुक्त कर सकते हैं। आपने मेरी बात मानी इसलिये मैं अपनेको ऋणी मानता हूँ। मेरी मान्यता मेरे लिये है और श्रोताकी मान्यता उसके लिये।

प्रश्न—ऋणमें और क्या बात है?

उत्तर—ऋण रहते कोई मुक्त नहीं होता। मुक्त होनेपर ऋण रहता नहीं। बात यह है कि तुम्हारे निमित्त भगवद्विषयक बात कही। मेरे ज्यादा लाभ है। सुननेवाला श्रद्धावाला हो तो मेरी बुद्धिमें बात आती है। जो बुद्धिमें आती है उसका एक अंश मनमें आता है, मनकी एक अंशकी बात वाणीमें आती है। जो आप सुनते हैं वह मेरी वाणीका एक अंश सुनते हैं, फिर जो सुनी उसका एक अंश मनमें, मनका एक अंश बुद्धिमें आया। पहले पहल मुझे लाभ है। तुम्हारे कारणसे भगवच्चर्चा हुई। इसलिये मुझे तो लाभ ही है। तुम्हारा ऋण है तुम्हारे निमित्तसे बात कही गयी।

दो भाइयोंने झगड़ा किया, उनमें एकने मेरी बात मान ली तो मेरी सेवा हुई, मेरे ऊपर ऋण हुआ, मेरे ऊपर दया की। दूसरा नहीं मानता। माननेवाला बना तो आर्थिक हानि हुई, उसका फल स्वार्थ या परमार्थ कुछ भी तो होना चाहिये। इसने यही भरोसा किया कि इनकी बात माननेसे नुकसान नहीं है। मेरे कहनेसे रुपये छोड़े तो यह मेरे ऊपर भार रहा। यह ऋण मेरे ऊपर है, लौकिक नुकसान उठाया, सुख-शान्ति, अध्यात्मविषयमें उन्नति होगी, यह अभीष्ट है। अभीष्ट सिद्ध हो गया तो ऋण नहीं रहा।

अपनी आत्माके कल्याणके लिये प्रयत्न नहीं करे तो शास्त्र उसकी निन्दा करते हैं, पतन है। सकाम कर्मका फल अल्प है, निष्काम करो तो ठीक है, नहीं करो तो पाप नहीं। उत्तम कर्म

करके फल न चाहो या चाहो उसमें तुम्हारी खुशी है। अध्यात्म दृष्टिसे तो फल अल्प है पर लौकिक दृष्टिसे फल उत्तम है।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालंक्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते॥

(गीता ९। २१)

वे उस विशाल स्वर्गलोकको भोगकर पुण्य क्षीण होनेपर मृत्युलोकको प्राप्त होते हैं। इस प्रकार स्वर्गके साधनरूप तीनों वेदोंमें कहे हुए सकामकर्मका आश्रय लेनेवाले और भोगोंकी कामनावाले पुरुष बार-बार आवागमनको प्राप्त होते हैं, अर्थात् पुण्यके प्रभावसे स्वर्गमें जाते हैं और पुण्य क्षीण होनेपर मृत्युलोकमें आते हैं। कमाया उतना खर्च कर लिया। पुण्य किया उतना फल भोग लिया, खाता बराबर हो गया।

सकामी पुरुष जाने-आनेवाली गतिको प्राप्त होता है। मर्त्यलोकसे स्वर्गमें जाता है और जो पुण्य कर्म नहीं करते वे अधोगतिको जाते हैं। यह फल बताया।

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्। (गीता ७। २३)

परंतु उन अल्प बुद्धिवालोंका वह फल नाशवान् है। वह अल्प बुद्धिवाला है, बुद्धि नहीं है ऐसी बात नहीं है। **'तेषां अन्तवत्'** फल है। थोड़ी बुद्धिवालेको थोड़ा फल मिलेगा। गीताके श्लोक तौल-तौलकर रखे हैं। अपनी आत्माका कल्याण करनेवालेका पतन नहीं होता।

न हि कल्याणकृत् कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति। (गीता ६। ४०)

हे प्यारे! आत्मोद्धारके लिये अर्थात् भगवत्प्राप्तिके लिये कर्म करनेवाला कोई भी मनुष्य दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता।

यह बड़ा भारी आश्वासन है। दुर्गति नहीं होती तो क्या होगा? मरकर स्वर्गमें जायगा, फिर मर्त्यलोकमें उत्तम-कर्म करनेवालेके

घर जन्म लेगा अर्थात् '**श्रीमताम् शुचीनाम्**' के घर जन्म लेगा, क्योंकि कुछ पाप-कर्म भी हैं, इसीलिये जन्म होता है।

अच्छे पुरुष भी यह जानते हैं कि अपनी बात नहीं माने तो भी कहो। भगवान् और महात्मा बड़े दयालु हैं। दुर्योधन भगवान्‌की बात नहीं मानेगा, भगवान् यह जानते हैं तब भी समझानेके लिये गये। भगवान् कहते हैं—

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन॥ (गीता ७। २६)

हे अर्जुन! पूर्वमें व्यतीत हुए और वर्तमानमें स्थित तथा आगे होनेवाले सब भूतोंको मैं जानता हूँ, परंतु मुझको कोई भी श्रद्धा-भक्तिरहित पुरुष नहीं जानता।

भविष्यमें जिनको मनुष्य बनाना है, उनको भगवान् जानते हैं कि ये मेरा भजन नहीं करेंगे, फिर भी मनुष्य बना देते हैं। भगवान् कहते हैं—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥ (गीता ७। ३)

हजारों मनुष्योंमें कोई एक मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले योगियोंमें भी कोई एक मेरे परायण होकर मुझको तत्त्वसे अर्थात् यथार्थरूपसे जानता है।

अधिकार सबको देते हैं फिर भी सब भजन नहीं करते। महात्मा भी जानते हैं कि सब सुनेंगे पर काममें नहीं लायेंगे फिर भी सुनाते हैं, दयालु हैं। यह महात्मा और परमात्माकी दयाका रहस्य है।

❑❑

स्वार्थ-त्यागकी महिमा

जिसको हम स्वार्थ, लाभ समझते हैं वह पतनका रास्ता है। अधिकार एवं स्वार्थके लिये लड़ना घोर पतनका रास्ता है। हर एक आदमीके यह बात समझमें नहीं आती। धर्म ऐसी चीज है जिसके पालनसे इस लोक और परलोकमें लाभ होता है। परलोककी रक्षामें इस लोकमें भी लाभ है। कर्मयोग उसका नाम है जिसमें अपना स्वार्थ छोड़कर परोपकार करे। परोपकारका अहसान नहीं माने। अपनेको उसमें निमित्त माने। भगवान् कहते हैं—'**निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्**' ऐसा भगवान्का बनाया हुआ निमित्तमात्र माने।

दूसरोंके लिये अपने स्वार्थका बलिदान कर दे, यह परमात्माकी प्राप्तिका अधिकार है। लौकिक स्वार्थ पतन करनेवाली चीज है। जो अपनी आत्माका कल्याण करना चाहे उसे सोचना चाहिये कि दुनियाके लाभमें अपना लाभ है। अपना व्यक्तिगत नुकसान है, किन्तु दुनियाका लाभ है तो वही अपना लाभ है।

अपना स्वार्थ अहंकार करना अपने लिये खतरेकी चीज है। परमात्माकी प्राप्तिका मार्ग वह है जिसमें परमार्थ हो। किसीका लाभ अपना लाभ है। यह बात समझमें आ जाय तो बहुत लाभ है।

माता-पिताकी इच्छाके सामने अपनी इच्छाको कुचल डाले, यही अच्छी बात है। अपनी अनुकूलतामें हर्ष और प्रतिकूलतामें द्वेष—ये हर्ष-शोक बन्धनकारक हैं। इनको मिटानेके लिये शरणागतिका भाव कल्याणकारक है।

स्वार्थ काट डाले तो वह पदवी मिलती है। स्वार्थ परायणताको मिटाकर परमार्थ परायणतामें लगा दे तो मुक्तिका

प्रवचन—दिनांक २०। ३। १९४७, प्रात:काल ७.३० बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

मार्ग है। आपका प्रेम जब संसारमें नहीं रहा तो संसार जाओ जहन्नुममें। परमात्माकी प्राप्ति संसारसे राग और भोगेच्छा मिटानेसे, संसारको मिथ्या माननेसे, सत्ता उड़ा देनेसे या इच्छा हटानेसे होती है। इन सबका नतीजा एक है।

पूर्ण स्वतंत्र हो जाय या पूर्ण परतंत्र हो जाय तो बेड़ा पार है। वेदान्तके सिद्धान्तके अनुसार पूर्ण स्वतंत्र बन जाय—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥ (गीता ६। ३२)

हे अर्जुन! जो योगी अपनी भाँति सम्पूर्ण भूतोंमें सम देखता है और सुख अथवा दुःखको भी सबमें सम देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति॥ (गीता ५। २४)

जो पुरुष अन्तरात्मामें ही सुखवाला है, आत्मामें ही रमण करनेवाला है तथा जो आत्मामें ही ज्ञानवाला है, वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माके साथ एकीभावको प्राप्त सांख्ययोगी शान्त ब्रह्मको प्राप्त होता है।

या अपने-आपको भगवान्‌के समर्पण कर दो—यह परतंत्रता है। परमात्मा या महात्माके परतंत्र हो जाय, फल एक ही है। यह भक्तिका मार्ग है। कर्मयोगका मार्ग प्यारा लगे तो स्वार्थका त्याग करे। सार्वजनिक बात है।

संसारसे तीन चीजका त्याग बताया—

१. कर्मयोगमें—कर्मके संगका त्याग, स्वार्थका त्याग।

२. भक्तियोगमें—संसारसे प्रीतिका त्याग, शरणागतिमें भगवान्‌के परतंत्र रहना।

३. ज्ञानके मार्गमें—संसारकी सत्ताका त्याग।

इन सबका आखिरी नतीजा एक है, यह सिद्धान्तकी बात है। समझमें आनेसे आत्माके कल्याणमें शंकाकी बात नहीं।

१. संसारसे प्रीति करना मौतसे प्रीति करना है।

२. संसारके पदार्थोंकी इच्छा करना मौतकी इच्छा करना है।

३. संसारसे सम्बन्ध जोड़ना मौतसे सम्बन्ध जोड़ना है।

४. संसारकी सत्ता मानना मौतकी फाँसीमें फँसना है।

यत्साङ्ख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते। (गीता ५।५)

ज्ञानयोगियोंद्वारा जो परमधाम प्राप्त किया जाता है, कर्मयोगियोंद्वारा भी वही प्राप्त किया जाता है।

साङ्ख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः। (गीता ५।४)

उपर्युक्त संन्यास और कर्मयोगको मूर्खलोग पृथक्-पृथक् फल देनेवाले कहते हैं न कि पण्डितजन।

ऊपर चार बातें कही गयीं वे चारों इन दो साधनोंके अन्तर्गत हैं।

❑❑

नामजपका प्रभाव एवं रहस्य

कलिकालमें भगवान्‌के नामका जप सबसे बढ़कर है। कहा है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

(विष्णुपुराण १।४१।१५)

कलियुगमें केवल श्रीहरिका नाम ही, हरिका नाम ही, हरिका नाम ही परम कल्याण करनेवाला है। इसको छोड़कर अन्य कोई उपाय नहीं है, नहीं है, नहीं है। तुलसीदासजी कहते हैं—

कलिजुग केवल नाम अधारा। सुमिरि सुमिरि भव उतरहु पारा॥

नामका तत्त्व, रहस्य, गुण, प्रभाव समझना चाहिये। उससे नाममें स्वाभाविक रुचि होती है। रुचि होनेसे नामका जप अधिक होता है। रुचि नामका तत्त्व रहस्य समझनेसे होती है। नाममें गुण क्या है? गीतामें दैवी सम्पदाके गुण अ० १६ श्लोक १ से ३ तक बताये गये हैं, वे सब-के-सब भजनेवालेमें आ जाते हैं। और भी गुण आते हैं। नामजपसे नामी याद आ जाता है। जिसका स्मरण किया जाता है, उसका अक्स (बिम्ब) पड़ता है। नीचके दर्शन, स्पर्श, भाषणसे नीचका असर पड़ता है। साधुके संगसे साधु, पापीके संगसे पापी हो जाता है। भगवान्‌में जितने गुण हैं, वे भगवान्‌के नाममें हैं। नाम और नामीमें भेद नहीं है। भगवान्‌के नाम-जपसे भगवान्‌की स्मृति हो जाती है। तुलसीदासजी कहते हैं—

सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥

भगवान्‌के नाम-स्मरणसे हृदयमें विशेष रुचि, प्रेम होता है। मनुष्य कोई भी काम करे। करते-करते उसमें रुचि हो जाती है। आरम्भमें बालक विद्या पढ़ता है तो पहले रुचि नहीं होती, परन्तु

प्रवचन—दिनांक २१।३।१९४७, प्रात:काल ७.३० बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

पढ़ते-पढ़ते आगे जाकर रुचि हो जाती है। उसी प्रकार नाम-स्मरण करनेसे ही आगे जाकर उसमें रुचि हो जाती है। नामके जपसे दया, क्षमा, समता, शान्ति, प्रीति, ज्ञान सब आ जाते हैं।

राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर॥

जैसे दीपकको देहरीपर रखनेसे बाहर-भीतर प्रकाश हो जाता है, इसी प्रकार रामनामरूपी मणि जिह्वारूपी देहरीपर रख दे तो बाहर-भीतर प्रकाश हो जाता है। मणि हवासे नहीं बुझती। मुँह फाटक है। 'रा' उच्चारण करनेसे सब पाप बाहर निकल जाते हैं और 'म' के उच्चारणसे कपाट बन्द हो जाते हैं, जिससे पाप फिर नहीं आ सकते। तुलसीदासजीने कहा है कि नामका प्रभाव इतना है कि इससे दुर्गुण, दुराचार और पाप सब नष्ट हो जाते हैं, नीच पवित्र हो जाते हैं। प्रभावकी बात बताते हैं—

जबहिं नाम हिरदै धरो भयो पापको नाश।
जैसे चिनगी अग्निकी परी पुराने घास॥

नाम हृदयमें धारण करते ही क्षणभरमें सारे पापोंका नाश हो जाता है, जैसे सूखी घासमें चिनगारी पड़नेसे वह भस्म हो जाती है। यह प्रभाव है। ऐसा प्रभाव है कि पापीसे भी पापीका उद्धार हो जाता है। भगवान्‌के भजनके प्रभावसे भगवान् स्वयं वशमें हो जाते हैं।

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥

पवनसुत हनुमान्‌जीने भगवान्‌के नाम-स्मरणसे भगवान् रामको अपने अधीन कर रखा है।

अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ॥

वेश्यागमन करनेवाला अजामिल, पशु गज (हाथी), वेश्या भगवान्‌के नामके प्रभावसे सब मुक्त हो गये। गीतामें भी कहा है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(गीता ९। ३०-३१)

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही माननेयोग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है। अर्थात् उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।

यह नामके भजनका प्रभाव है। गरुड़जीने काकभुशुण्डिजीसे पूछा कि आपके आश्रममें आनेसे सब पवित्र हो जाते हैं, यह ज्ञानका प्रभाव है या भक्तिका प्रभाव है? काकभुशुण्डिजीने कहा—यह सब भक्तिका ही प्रभाव है।

अपनी आत्माका कल्याण चाहे पर अपना मन नहीं लगे तो भगवान्‌का भजन ही करे। आतुर आदमीके लिये भी यही बात है कि भगवान्‌का भजन करे। भगवान्‌का नाम निराधारका आधार है। भगवान्‌से भी बढ़कर भगवान्‌के नामको कहें तो भगवान्‌की ही बड़ाई है और अतिशयोक्ति भी नहीं है। नामका गुण-प्रभाव जानना चाहिये। गुण क्या है? संसारमें जितने गुण हैं वे सब नाम लेनेवालेमें अपने-आप आ जाते हैं। यह भजनकी महिमा है। दोष, दुर्गुण, दुराचारका अपने-आप नाश हो जाता है, यह प्रभाव है।

नामका तत्त्व समझना चाहिये। जैसे जल, बर्फ एक है, व्यापक अग्नि और प्रज्वलित अग्नि एक है, उसी प्रकार

भगवान्‌का नाम और स्वरूप एक है। गो इति शब्द, गो इति अर्थ, गो इति ज्ञान यह सब एक है, वैसे ही भगवान् और भगवान्‌का नाम, धातु एक है, रस, जल और जिह्वा एक है। भक्ति, भक्त और भगवान् धातुसे एक हैं। भगवान्‌का नाम, रूप और भगवान्‌का ज्ञान एक है। भगवान्‌के नामका रहस्य समझना चाहिये। भगवान्‌के नामका बड़ा भारी प्रभाव है, जिससे पापीके सब पापोंका नाश हो सकता है। इसका मतलब यह नहीं कि खूब पाप करो। जो यह समझकर पाप करता है, वह नामके रहस्यको नहीं समझा। जो पुरुष यह समझता है कि पाप कर लो, भजन करके पापका नाश कर लेंगे, यदि इस आशयसे पाप करने लगे तो 'नाम' पापकी वृद्धिमें हेतु हो गया। जो यह समझकर पाप करता है उसके पापका नाश नहीं होता।

किसीको यह अधिकार मिल गया कि उसकी आज्ञासे फाँसी छूट सकती है। उसके दामादको मालूम हुआ कि मेरे श्वशुरका ऐसा अधिकार है, वह बेधड़क होकर अत्याचार करने लगा। निरंकुश होकर चोरी, लूट-खसोट, डाका डालने लगा। लोग बड़े तंग आ गये। श्वशुरसे शिकायत की कि आपके भरोसेपर आपका दामाद अत्याचार कर रहा है। श्वशुरने दामादको बुलाकर कहा—अत्याचार करना अच्छा नहीं है, तुम्हें फाँसी हो जायगी। दामादने जवाब दिया कि मैं तो आपके बलपर अत्याचार कर रहा हूँ। मुझे विश्वास है कि आप मुझे फाँसी होनेसे बचा लेंगे। श्वशुरने कहा—तुम जैसा अत्याचार करते हो उसमें मदद देनेके लिये मेरा अधिकार नहीं है। दामादने समझा ये तो ऐसे ही कहते हैं, मौका आयेगा तो फाँसीसे बचा ही लेंगे। अपनी लड़कीको विधवा नहीं होने देंगे। लड़कीको बुलाकर समझाया—बेटी, तुम समझा देना। लड़कीने अपने पतिसे कहा

कि पिताजीकी यह आज्ञा है, पिताजी तुम्हारी सहायता नहीं करेंगे। उसने जवाब दिया—तुम्हारे पिताको अधिकार है वे जरूर बचा लेंगे। लड़कीने पितासे कहा—पिताजी, वे तो मानते नहीं। अन्तमें एक दिन वह पकड़ा गया, फाँसीकी सजा हुई, दिन निश्चित हुआ। उससे पूछा गया तुम क्या चाहते हो? वह बोला, मैं अपनी स्त्रीसे मिलना चाहता हूँ। स्त्रीसे मिला और कहा—तुम मेरे प्राण बचानेके लिये पिताजीसे कह दो। लड़कीने पितासे कहा—पिताजी, बचाइये, नहीं तो मैं विधवा हो जाऊँगी। पिताने कहा—बेटी, तुम्हारे भाग्यमें विधवा होना ही लिखा है। वह फाँसीपर चढ़ा दिया गया। उसकी ओटमें पाप नहीं हो सका। नामकी ओटमें पाप करे तो वह नाम पाप बढ़ानेवाला होता है—यह नामका रहस्य समझना है। नामकी ओटमें पाप करना भगवान्‌का अपराध है। पूर्वके पापोंके लिये क्षमा माँग ले और भविष्यमें पाप न करनेकी प्रतिज्ञा कर ले तो पूर्वके पापोंकी माफी है—ऐसा न्याय है। नाममें बड़ा भारी रहस्य भरा है। नामका तत्त्व, नामका गुण, नामका प्रभाव समझमें आ जाय तो नाम छूट नहीं सकता। निरन्तर जप करता ही रहता है। छोड़ नहीं सकता फिर बेड़ा पार है।

❑❑

निर्भरता तथा निष्कामता

प्रश्न—निर्भरताका क्या स्वरूप है?

उत्तर—सकाम निर्भरता वह है जैसे बालक मातापर ही निर्भर रहता है, तकलीफ हो तो रोने लगता है। माता दौड़कर सँभाल लेती है। इस उद्देश्यसे रोता है कि माता रक्षा करेगी। इसी प्रकार कोई आवश्यकता हो तो भगवान्‌पर निर्भर होवे कि वे काम चलायेंगे, वे स्वतः ही करेंगे, यदि यह भीतरका लक्ष्य है तो यह सकाम है। लौकिक योगक्षेम भगवान्‌पर छोड़ देना सकाम निर्भरता है। पर पारलौकिक कामना—अपनी आत्माके कल्याणकी बातको भगवान्‌पर छोड़ दे तो यह निष्कामके तुल्य है। जिसे योगक्षेम, भुक्ति, मुक्तिकी कोई परवाह नहीं, वह एकदम निर्भर है। जो कुछ होता है, उचित होता है, न्याय ही होता है, उसके लिये घबरानेकी और भगवान्‌को पुकारनेकी जरूरत नहीं है। जैसे प्रह्लादपर विपत्ति आती है तो वह भगवान्‌को नहीं पुकारता और न यही समझता है कि भगवान् विपत्ति दूर कर सकते हैं। उनको यह विचार करनेकी जरूरत नहीं, जो कुछ हो रहा है उचित हो रहा है। भगवान् हैं तो अन्याय हो ही कैसे सकता है। ईश्वरका अस्तित्व है, न्याय है तो भगवान्‌के विधानके सिवाय और कुछ व्यवहार हो ही नहीं सकता। किसीपर भी नहीं होता फिर मेरे ऊपर क्यों हो? फिर भगवान्‌को पुकारनेकी क्या जरूरत है। पुकारे तो बालकपन है।

भगवान्‌के अस्तित्वपर विश्वास, विधानपर पूरा विश्वास, जो होता है वह सब भगवान्‌का विधान है, कुछ भी अनुचित नहीं

प्रवचन—दिनांक २१। ३। १९४७ सायंकाल ६.१५ बजे, गंगा किनारे।

होता, इसपर विश्वास—ऐसी बेफिक्री है जैसे बालककी मातापर बेफिक्री है।

प्रह्लादजीका दृष्टान्त निर्भरता और निर्भयताका सबसे बढ़कर है। वह यह भी नहीं मानता कि हिरण्यकशिपु अत्याचार कर रहा है। निष्कामताकी पराकाष्ठा है कि देनेपर भी नहीं लेना। प्रह्लादकी निर्भयता, निर्भरता और धैर्य एकदम आदर्श है। धैर्य इतना कि भगवान्‌की इच्छा हो तो दर्शन दें, नहीं तो न दें। उतावलापन नहीं है। गहरापन भी अथाह है। उनके भावको कोई समझ भी नहीं सकता।

प्रश्न—माँगता नहीं, माँगनेकी भावना नहीं पर प्राप्त हो उसको मान ले कि भगवान्‌ने दिया है—तो क्या मानना चाहिये?

उत्तर—अच्छा ही है, यह भगवान्‌का सकामी भक्त है। सकाम भक्ति भी कल्याण करनेवाली है। भगवान्‌ने पदार्थ दिया है, यह पदार्थको भी आदर देना है, भगवान्‌को तो देना ही है। पदार्थकी आवश्यकता ही क्यों रहनी चाहिये? दें तो क्या और नहीं दें तो क्या, पदार्थकी लिप्सा, आवश्यकता नहीं रहे। बेफिक्री रहे। कोई आवश्यकता न रहे, भगवान्‌के मिलनेकी भी आवश्यकता न रहे। भगवान्‌की मौज हो तो मिलें, नहीं तो नहीं। दर्शनकी कोई परवाह न रहे।

यहाँ उपरति, शान्ति, प्रसन्नता स्वाभाविक है, परमात्माके ध्यानमें वृत्तियाँ आप ही लगती हैं। परमात्माके ध्यानके सिवाय और कुछ अच्छा लगता ही नहीं। ध्यानके लिये कोशिश करनी नहीं पड़ती। आलस्य पासमें नहीं आता। ज्ञानकी बाहुल्यता है, शरीरमें चेतनता है, यह बुद्धिसे मिली हुई आत्माकी चेतनता है। बुद्धि, वृत्ति और चेतन (पुरुष) मिला हुआ है, यह चेतनताकी बाहुल्यता है। सात्त्विक बुद्धिसे मिला हुआ चेतन है, वह चेतनके

रूपमें प्रतीत होता है। विशुद्ध चेतन तो जाननेमें नहीं आता। शुद्ध हुई बुद्धिमें चेतनका आभास है, उसका ध्यान है, उसके ध्यानके बादमें परमात्माकी प्राप्ति है। ज्ञानकी अनन्ततामें ज्ञेय अल्प है, उसके बाद अल्प नहीं, ज्ञान-ही-ज्ञान है। उसके बाद चेतन-ही-चेतन है। चेतन है, द्रष्टाका स्वरूप है। ज्ञानके साथ आनन्द लगा है। ज्ञानकी बाहुल्यतामें ऐसा प्रतीत होता है मानों ज्ञान ही आनन्द है। ज्ञान और आनन्द सात्त्विक है। या यों कहो कि मायासे, बुद्धिसे मिला हुआ है।

असली ध्यानका बड़ा प्रभाव है। ध्यानके परमाणु सब तरफ फैलें तो कोई भी आदमी हो उसका ध्यान लग जाय। ऋषिलोग तपस्या, धारणा, ध्यान, समाधि करते थे, उनके परमाणु सब जगह फैले हुए हैं। जैसे आकाशमें शब्द नित्य है, वैसे ही अन्तःकरणके ध्यानके परमाणु नित्य हैं। शुद्ध अन्तःकरणवाला पुरुष उनको आकर्षण करके लाभ उठाता है। उसमें प्रवेश कर जाय। सूर्यमुखी काँच सूर्यके तेजको आकर्षण कर लेता है, वैसे ही शुद्ध अन्तःकरणवाला पुरुष उनको आकर्षण कर लेता है।

❑❑

भगवान्‌की लीलामें तत्त्व एवं रहस्य

कल भगवान्‌के नामके विषयकी बात कही थी, आज अवतारके विषयमें कही जाती है। भगवान् अवतार लेकर लीला करते हैं और बिना अवतारके भी लीला करते हैं। संसारमें जो कुछ होता है वह भगवान्‌की लीला ही है। संसारमें नास्तिकवाद भी भगवान्‌की मर्जीसे होता है। इसमें क्या रहस्य है? नास्तिकता फैलती है—भगवान् नहीं हैं, ईश्वर मृत्युशय्यापर है, धर्मको भाड़में झोंक दो, आदि। बात यह है कि सनातनधर्म चनेकी ज्यों भुजता नहीं है, ईश्वरको मानें चाहे न मानें, ईश्वर तो कायम ही रहेंगे। फिर भगवान् नास्तिकोंको क्यों पैदा करते हैं? आवश्यकता है। संसारमें अग्निहोत्र, बलिके नामपर पशुओंकी हिंसा आसक्तिके कारण अधिक होने लगी, तब गौतम बुद्धका अवतार होकर यह बाध किया गया कि वेद, शास्त्र सब झूठा है, ऐसा कहकर धर्मके नामपर जो हिंसा होती थी, वह दबा दी गयी। गोसाइयोंने पान चबाकर लोगोंको जूठा खिलाना शुरू किया तो महर्षि दयानन्दजीने उनका खण्डन किया कि मूर्तियाँ झूठी हैं। मन्दिरोंमें व्यभिचारका अड्डा होने लगा, जिससे नास्तिकवाद फैल गया। वर्तमानमें बहुत-से जूठा खिलानेवाले महात्मा बनकर सारा काम गड़बड़ कर रहे हैं। बगुला भक्ति, पाखण्ड संसारमें फैलाकर आजकल बहुत-से लोग भक्त, साधु, महात्मा, जीवन्मुक्त, ज्ञानी, झूठे अवतार बने बैठे हैं। कोई योगिराज बने हुए हैं। संसारमें सच्चे महात्मा बहुत कम हैं। दंभ, पाखण्डवादका नाश करनेके लिये नास्तिकवाद पैदा किया। फोड़ेमें मवाद पड़ जाता है तो डॉक्टरसे चिरवाते हैं। डॉक्टर गला हुआ मांस काटता है और जब कच्चे मांसमें छुरी जाती है तो वह

प्रवचन—दिनांक २२। ३। १९४७ प्रात:काल ७.३० बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

चिल्लाता है। तब डॉक्टर समझता है कि कच्चा मांस कट रहा है। भगवान्‌को दम्भ, पाखण्ड हटाना है, पर भजन करनेवाले हल्ला मचाते रहेंगे तो उनको तो बचायेंगे। सच्ची चीज है, वह तो कायम रहती है। हमलोगोंका चिल्लाना भी ठीक है और भगवान्‌का नास्तिकवाद फैलाना भी ठीक है। धर्मके विरुद्ध कोई बोले तो उसका बहिष्कार करना अपना कर्तव्य है। भगवान्‌के दरबारमें कोड़ा लगानेवाला कोड़ा लगाता है और मलहम-पट्टी करनेवाला मलहम-पट्टी करता है। अपना कर्तव्य है उसका पालन करना चाहिये। जिस प्रकारसे धर्मका प्रचार, ईश्वरकी भक्तिका प्रचार हो वह काम करे। जो भी कुछ हो रहा है, परेच्छासे या अनिच्छासे हो रहा है, यह ईश्वरकी लीला है तथा अपने द्वारा जो कर्म हो, वह भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार हो, अपनी इच्छासे नहीं। अनिच्छासे जो कर्म हो वह भगवान् खुद करते हैं। परेच्छासे हो वह ईश्वर करवा रहे हैं और स्वेच्छासे हो वह भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार होना चाहिये। वेदकी आज्ञा ईश्वरकी आज्ञा है। अपनेको कठपुतलीकी भाँति भगवान्‌के सुपुर्द कर देना चाहिये। खयाल रखना चाहिये कि अपनेको भगवान्‌के हाथ सौंप दे, कामके हाथमें नहीं। कामके हाथमें अपनेको सौंप देंगे तो पापकर्म होंगे और ईश्वरके हाथमें सौंप देंगे तो भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार ही होंगे। यह परीक्षा है। अर्जुनने पूछा तो भगवान्‌ने यही कहा—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥ (गीता ३। ३७)

रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है, यह बहुत खानेवाला अर्थात् भोगोंसे कभी न अघानेवाला और बड़ा पापी है, इसको ही तू इस विषयमें वैरी जान।

भगवान्‌की बिना इच्छाके हमारी इच्छासे काम होता है तो

कामके हाथमें बागडोर है। शास्त्रके अनुकूल हमारे द्वारा क्रिया हो तो हमारी बागडोर भगवान्‌के हाथमें है। जैसे बन्दर बाजीगरकी रुखके अनुसार नाचता है, वैसे हमारे बाजीगर भगवान् हैं और हम उनके बन्दर हैं। वे जैसे नचावें, वैसे नाचें। हमको भगवान्‌की इच्छा, रुखके अनुसार बरतना चाहिये। यह हमारा काम है। अनिच्छासे, परेच्छासे जो कुछ काम हो रहा है, वह भगवान्‌की लीला है और हम भी भगवान्‌की इच्छाके अनुसार बरतें तो यह भी भगवान्‌की लीला है। भगवान् हमारेसे लीला करवा रहे हैं। यह निराकार भगवान्‌की लीला है। अब साकार भगवान्‌की लीला बतायी जाती है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥ (गीता ४।७-८)

हे भारत! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूपको रचता हूँ अर्थात् साकाररूपसे लोगोंके सम्मुख प्रकट होता हूँ। साधु पुरुषोंका उद्धार करनेके लिये, पाप-कर्म करनेवालोंका विनाश करनेके लिये और धर्मकी अच्छी तरहसे स्थापना करनेके लिये मैं युग-युगमें प्रकट हुआ करता हूँ।

भगवान् जन्म लेते हैं और क्रिया भी करते हैं तो हमारे और भगवान्‌के जन्म-कर्ममें क्या भेद है? भगवान् कहते हैं—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥ (गीता ४।९)

हे अर्जुन! मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् निर्मल और अलौकिक हैं—इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्वसे जान लेता है, वह

शरीरको त्यागकर फिर जन्मको प्राप्त नहीं होता, अपितु मुझे ही प्राप्त होता है।

जिनके कर्ममें अहंकार, ममता, आसक्ति, स्वार्थ होते हैं, वे बुरे हैं। भगवान्‌में ये नहीं होते, अतएव उनके सब कर्म दिव्य हैं, लीलारूप हैं। उन कर्मोंमें साधुओंका उद्धार, धर्मकी स्थापना और दुष्टोंका नाश—ये तीन बातें होती हैं। कभी तीनों, कभी दो और कभी एक होती है। दुष्टोंके संहारमें भी उनका उद्धार है। भगवान् श्रीकृष्ण प्रभास-क्षेत्रमें गये। वहाँ यादव लड़े और आपसमें ही संहार हो गया। उनकी लीलामें धर्मकी मर्यादा भी रहती है। भगवान्‌की हर एक लीलामें तत्त्व, रहस्य, गुण, प्रभाव भरे रहते हैं। इनको देखना चाहिये। भीतरमें छिपी हुई बातको रहस्य कहते हैं। रामचरित्रमें भगवान् लीला करते हैं। भगवान्‌की लीलामयी मोहनी-मूर्ति सबको अपने-अपने भावके अनुसार दीख रही है।

जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥

पापियोंको कालरूप दीखे। उस समय सब राजा हार गये। जनक निराश हो गये कि मैं यह जानता कि पृथ्वी वीरविहीन हो गयी तो ऐसी प्रतिज्ञा नहीं करता। लक्ष्मण बिगड़े और कहा—हे जनक! रघुनाथजीके मौजूद रहते आप यह क्या कह रहे हैं? रघुनाथजीकी आज्ञा हो तो मैं सारे ब्रह्माण्डको छत्रकदण्डकी तरह तोड़ डालूँ। उसके बाद धनुष-भंग हुआ। जिससे बड़ा भारी शब्द हुआ। परशुरामजी आये और बहुत बिगड़े। पूछा हे जनक! इस धनुषको किसने तोड़ा? लक्ष्मण बोले—यह पुराना धनुष था, छूते ही टूट गया, इसमें श्रीरघुनाथजीका क्या दोष है जो आप इतने नाराज हो रहे हैं। बालकपनमें हमने बहुत-से धनुष तोड़ डाले, तब तो आपने कभी भी इतना क्रोध नहीं किया, अब इस

धनुषपर आपकी इतनी ममता क्यों है? परशुरामजी फिर बि
तो रामचन्द्रजीने कहा—महाराज! यह लक्ष्मण तो अभी बालक
है। इसपर क्रोध नहीं करना चाहिये। परशुरामजीने कहा—तेरा
भाई तेरी रुखसे ही कह रहा है, तू राम कहाँसे आया, राम तो
मैं हूँ। भगवान्‌ने कहा—

राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तुम्हारा॥

आपकी और हमारी बराबरी कैसे हो सकती है? आप पूज्य हैं आपके तो चरण और मेरा मस्तक—कहाँ बराबरी हो सकती है। आप पूछते हैं कि धनुष किसने तोड़ा?

नाथ संभु धनु भंजनिहारा। होइहि कोउ एक दास तुम्हारा॥

हे नाथ! शम्भुका धनुष कौन तोड़ सकता है। उसको तोड़नेवाला आपका ही कोई एक सेवक है। परशुरामजीने कहा—सेवक वह है जो सेवकाई करता है शत्रुकी करनी करके सेवक कैसे हो सकता है? वह तो वैरी है। अतएव या तो तुम "राम" कहलाना छोड़ दो, अन्यथा मेरेसे युद्ध करो। रामने कहा—महाराज! स्वामी और सेवककी लड़ाई कैसे हो सकती है। परशुरामजीने कहा—अच्छा तो मेरा धनुष चढ़ा दो तो मैं तुम्हें राम समझूँगा। परशुरामजीने अपनी खूब प्रशंसा की तो भगवान्‌ने कहा—रघुवंशी भयके कारण किसीको मस्तक नहीं झुकाते। हम गौ, ब्राह्मणपर अपनी शूरवीरता नहीं चलाते। भगवान्‌ने कहा—

बिप्रबंस की अस प्रभुताई। अभय होय जो तुम्हहिं डेराई॥

धन्य है ब्राह्मणवंश, ब्राह्मणवंशकी ऐसी प्रभुता है जो अभय होता है वह भी आपसे डरता है। मैं अभय हूँ तो भी आपसे डर रहा हूँ। तब परशुरामजीने सोचा—अभय तो साक्षात् विष्णु हैं। फिर कहा—

राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु चाप मिटै संदेहू॥

यदि आप रमापति राम हैं तो यह शार्ङ्गधनुष चढ़ाइये।

छुअत चाप आपुहिं चलि गयऊ। परसुराम मन बिसमय भयऊ॥

तब विश्वास हुआ कि ये साक्षात् विष्णु हैं तो स्तुति करने लगे। यह लीला है—इसमें देखना चाहिये।

प्रभाव—धनुषको छूनेसे ही चढ़ गया।

विनय गुण है, बात नीतिसे कर रहे हैं। ब्राह्मणके साथ कैसा बर्ताव हो—यह धर्म है।

रहस्य यह है—यह नहीं कहा कि मैं साक्षात् विष्णुका अवतार हूँ। शंभुके धनुषको कोई एक तोड़ सकता है। वह एक कौन? एक भगवान् हैं। अभय होकर मैं तुमसे डरता हूँ, यह भी गुप्तरूपसे अपनेको प्रकट करना है। आप वीरकी तरह आये हैं तो हम वीरसे नहीं डरते। आप ब्राह्मण हैं इसलिये डरते हैं। यह गोपनीय बात है। हर एक चौपाईमें देखो, बाहरका अर्थ एक और भीतरका दूसरा। बाहरमें यह है कि मैं ''राम'' और आप ''परशुराम''। राममात्र कहनेमें रहस्य यह है कि उच्चकोटिके पुरुष अपनेको छोटा ही बताते हैं। आप केवल फरसा लिये फिरते हैं, आप गलेमें नव सूत डाले फिरते हैं—उच्चकोटिके गुण कहाँ बताये। शब्दोंसे भीतरमें अपना प्रभाव, ज्ञान प्राप्त करा देनेके लिये कहते हैं तो यह रहस्य है। तत्त्व—जो सच्चिदानन्द है वह राम है यह उनके ऊपर असर डाला—

राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहुँ चाप मिटे संदेहू॥

रमा=लक्ष्मी और रमा=प्रकृति—दोनों अर्थ हैं।

भगवान् राम लंकासे विमानमें बैठकर अयोध्या आते हैं तो नगरके सब नर-नारी भगवान्‌से मिलना चाहते हैं। भगवान्‌ने देखा कि सब मिलना चाहते हैं तो एक लीला की—

अमित रूप प्रकटे तेहि काला। जथा जोग मिले सबहि कृपाला॥

भगवान्‌ने अनन्त रूप धारण कर लिये और—

छन महिं सबहि मिले भगवाना। उमा मरम यह काहुँ न जाना॥

एक क्षणमें भगवान् सबसे मिल लिये। यह मर्मकी बात थी। जिससे भगवान् मिलते थे वह इतना मुग्ध था कि वह आश्चर्य और प्रेममें तन्मय था। उसे पता नहीं था कि भगवान् और भी किसीसे मिल रहे हैं। जिससे भगवान् मिलते थे वह यही समझता था कि मेरेसे ही मिल रहे हैं। तात्त्विक बात—भगवान्‌के जो रूप थे वे सब एक भगवान्‌के ही अनेक रूप थे। ब्रह्माके प्रपंचके शरीर नहीं थे। एक क्षणमें इतने रूप धारण कर लिये—यह प्रभाव है। गुण—कितना प्रेम करते हैं। **'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'** का व्यवहार है। प्रेम और दयापूर्ण व्यवहार है। यथायोग्यमें नीति और धर्म भरा है। जिसका जैसा भाव, व्यवहार है, वैसे मिलते हैं।

भगवान्‌की प्रत्येक लीलामें इस तरह नीति, धर्म, गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य देखना चाहिये। भगवान् मुनियोंसे कहते हैं—समर-सागरसे बेड़ा पार करानेवाले ये मेरे मित्र रीछ और भालू हैं। भगवान् रीछ और भालुओंसे कहते हैं कि मुनियोंकी कृपासे राक्षसोंपर विजय पायी है। स्त्रियोंको कामरूप, योद्धाओंको वीररूप और भक्तोंको भगवान् दीखे इसमें कौन-सी बात सत्य है? भावनानुसार सब बातें सत्य हैं—

जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥

बंदरोंके मनमें यह बात थी कि हमारे पुरुषार्थसे विजय प्राप्त हुई तो भगवान्‌ने ऋषियोंसे कहा कि इनकी मददसे मैंने राक्षसोंको मारा। यह भगवान्‌की अद्‌भुत महिमा है।

सुदामाकी कथामें देखें—

१. अत्यन्त गरीबको भगवान्‌ने मालामाल कर दिया।

२. भगवान्‌के सिवाय बिना प्रयोजन कोई ऐसा प्रेम कर सकता है क्या?

३. विपत्तिकालमें मित्रसे कैसे मिलना चाहिये, जैसे सुदामासे भगवान् मिलते हैं।

४. रहस्य क्या है? सुदामाको मालामाल कर दिया पर सुदामाको बताया नहीं। मुखसे कहा नहीं, जनाया नहीं, वह गया तो पता चला। भगवान्‌ने हमको शिक्षा दी कि जिसको दो, वह भी नहीं जाने इस रीतिसे दो। इससे बर्ताव-तरीका सीखना चाहिये।

५. प्रभाव क्या है? रात्रिमें क्षणभरमें ही सुदामाको द्वारका पहुँचा दिया और क्षणभरमें ही सुदामाके लिये महलकी रचना कर दी।

६. विनोद—भगवान् सुदामाको पूछते हैं—क्या तुम्हें वह पुरानी बात याद है, जब गुरुके यहाँ रहे थे, तब जंगलकी बात याद है? यह विनोद इसलिये है कि मित्रके साथ छिपावका फल दरिद्रता है। छिपावके कारण सुदामाको दरिद्रता मिली थी। एक मुट्ठी चने मिलें, उनको भी मित्रसे छिपाना नहीं चाहिये।

७. नीति—अपने प्यारे मित्रको सचेत कर देना कि भविष्यमें सावधान रहे। यह नहीं कहा कि तुमने मेरे साथ ऐसा बर्ताव किया।

८. दया और प्रेमका बर्ताव करना गुण है।

९. तात्त्विक बात—सच्चिदानन्द पूर्ण ब्रह्म परमात्मा कृष्णके रूपमें, राजराजेश्वरके रूपमें गुरुके यहाँ पढ़ रहे हैं। वे ही ऐश्वर्यके मालिक सुदामासे प्रेम कर रहे हैं। वे एक ही पूर्ण ब्रह्म परमात्मा हैं।

❑❑

निरन्तर ध्यानकी युक्ति

परमात्माका ध्यान सकाम हो या निष्काम, निरन्तर ध्यान होना चाहिये। और कोई शर्त नहीं है। प्रेमपूर्वक भगवान्‌की पूजा, श्रद्धापूर्वक भगवान्‌का भजन और भगवान्‌को जानना—ये बातें प्रधान हैं। भक्तिके मार्गमें प्रेम प्रधान है और ज्ञानके मार्गमें जानकारी प्रधान है। अज्ञानियोंके लिये सत्संग उपाय है, उसके अनुसार साधन करे। श्रद्धा, प्रेम, ज्ञान, चिन्तन—ये चार बातें हैं। आदरपूर्वक विश्वासका नाम श्रद्धा है।

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥ (गीता ३। २५)

हे भारत! कर्ममें आसक्त हुए अज्ञानीजन जिस प्रकार कर्म करते हैं, आसक्तिरहित विद्वान् भी लोकसंग्रह करना चाहता हुआ उसी प्रकार कर्म करे।

लोकसंग्रहका मतलब यह नहीं कि लोकदिखाऊ कर्म करे। श्रद्धासे काम करे। कर्मोंमें आसक्तिवाला पुरुष जिस प्रकार कर्म करता है, उसी प्रकार विद्वान्‌को अनासक्त होकर कर्म करना चाहिये। कर्ममें आसक्तिवाला सुचारुरूपसे कर्म करता है, वैसे ही अनासक्त पुरुष सुचारुरूपसे कर्म करे।

भगवान्‌में प्रेमके विषयमें—

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

प्रेम करना तो जानते ही हो। जैसे रुपयेमें प्रेम करते हो, वैसा प्रेम भगवान्‌में करो। जैसे कामी पुरुष स्त्रीमें प्रेम करता है, वैसे भगवान्‌में प्रेम करना चाहिये। नित्य-निरन्तर स्मरण करनेसे भगवान्

प्रवचन—दिनांक २२। ३। १९४७, ६.१५ बजे सायंकाल, गंगाकिनारे स्वर्गाश्रम।

मिल जायँगे—यह विश्वास हो जाय तो भगवान्‌का नित्य-निरन्तर स्मरण हो सकता है। जैसे नदीके उस पार जाना हो तो तैरनेवाला निरन्तर नदीका जल काटता ही जाता है, वैसे ही संसार-सागरसे पार जाना हो तो नित्य-निरन्तर जल काटता जाय। संसारके पदार्थ भोगका त्याग करता जाय। अहंकार, ममता, अभिमान, स्वार्थका त्याग करे। स्वार्थ-त्यागके अभिमानका भी त्याग करे। ऐसे त्याग करता जाय—भगवान्‌का निरन्तर स्मरण अन्य आदमियोंके देखादेखी करता जाय, जैसे एक आदमीको नींद आती हो तो देखादेखी दूसरेको भी नींद आने लगती है। वैसे ही सब ध्यान करते हैं तो ध्यानको देखकर ध्यान करना चाहिये।

आपने पूछा कि तुम्हारे मनमें क्या बात आयी, तो मेरे मनमें यह आयी कि सबको भुलाकर एक भगवान्‌का ध्यान करना चाहिये।

शनैः शनैरुपरमेद्‌बुद्‌ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्‌॥ (गीता ६। २५)

क्रम-क्रमसे अभ्यास करता हुआ उपरतिको प्राप्त हो तथा धैर्ययुक्त बुद्धिके द्वारा मनको परमात्मामें स्थित करके परमात्माके सिवाय और कुछ भी चिन्तन न करे।

क्रम-क्रमसे उपराम होकर धैर्ययुक्त बुद्धिके द्वारा मनको परमात्मामें स्थित कर दे और परमात्माके सिवाय अन्य किसीका चिन्तन ही न करे। चिन्तन करनेमें तो परिश्रम है और चिन्तन न करनेमें क्या परिश्रम है। स्वाभाविक चिन्तन हो उसमें परमात्मबुद्धि कर लो तो कोई आपत्ति नहीं। तीन बातें हैं—

परमात्माका ध्यान करो या सबका ध्यान छोड़ दो या जो चिन्तन हो उसमें भगवद्‌बुद्धि कर लो। तीनोंका एक ही फल होगा। परमात्माका निरन्तर ध्यान करे। परमात्मामें तन्मय होकर ध्यान करे, सबको भुला दे।

आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्। (गीता ६। २५)

मनको परमात्मामें स्थित करके परमात्माके सिवा और कुछ भी चिन्तन न करे।

परमात्माका ध्यान नहीं हो तो सबको भुला दे। भुलानेवाली वृत्तिको भी भुला दे। अथवा अपने तो कोई चिन्तन करे नहीं, पर जो कुछ स्मृतिमें आये, उसमें भगवद्‌बुद्धि कर ले तो भगवान्‌का ध्यान आप ही होने लगेगा।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥ (गीता ६। ३०)

जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।

इससे बढ़कर और क्या है। दृश्यमात्रमें संसारबुद्धि हो रही है, उसको भगवद्‌बुद्धि कर ले। उसको हटाना ही क्यों? भगवान् कहते हैं जो मुझे सर्वत्र देखता है उससे मैं कैसे छिप सकता हूँ? उसके सामने मैं ही हूँ। सुगमता तो इतनी दिखला दी। प्रयत्न करो तो भगवान्‌का करो, नहीं तो प्रयत्नरहित हो जाओ। परमात्माका ध्यान नहीं हो तो संसार छोड़ दो। संसारका ध्यान नहीं छूटे तो संसारमें भगवद्‌बुद्धि कर लो—तीनों बातें सुगम हैं। परमात्मा रसमय, आनन्दमय हैं। आनन्दके ध्यानमें प्रत्यक्ष आनन्द है। आनन्दमयका ध्यान नहीं हो तो संसारके संकल्पसे रहित हो जाओ। मनमें संसारका संकल्प हो तो उसमें भगवद्‌बुद्धि कर लो। **'वासुदेवः सर्वमिति'** जो कुछ है वह वासुदेव है, भगवद्‌बुद्धि ही तो करनी है। संसारमें सदा संसारबुद्धि होती आयी है, वह भगवद्‌बुद्धि कैसे हो? एक क्षणमें हो जाती है। जैसे एक लड़की

विवाहके पश्चात् ससुराल जाती है तो एक क्षणमें नाम बदल गया—वह 'बहू' बन गयी। एक लड़की अपना नाम बदल लेती है, फिर हम उससे भी गये बीते हो गये क्या? वह अपने-आपको बहू मानने लगती है।

संसारको परमात्मा मानना भाव ही है। मानना तुम्हारे सहारेकी बात है। भाव बदलना तुम्हारे हाथ है। परिश्रमका काम नहीं है। जो कुछ प्रतीत होता है, उसको संसार मानते हो, उसको भगवान् मान लो। सब चीजें मानी हुई हैं, स्त्रीमें स्त्रीकी भावना कर ली, वह स्त्री बन गयी। इतनी प्रकारकी मान्यता कि मैं मनुष्य हूँ, जाति, वर्ण, आश्रमकी कितनी ही मान्यता की। जितनी की उससे अधिक एक और मान्यता कर ले कि संसार भगवान् है। संसार भी ब्रह्म और मैं भी ब्रह्म। यदि तुम्हारेमें ब्रह्मकी भावना न हो तो अपनेको भगवान्‌का सेवक मान लो।

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

संसारमें भगवान्‌की भावना नहीं हो तो संसारको मिथ्या मान लो। यहाँ करना नहीं पड़ता, मानना पड़ता है और मानना कोई आफत नहीं है। जैसे मन्दिरकी प्रतिमाको भगवान् मानते हैं। विवाहमें कुशाके ब्रह्माजी बनाये जाते हैं, उनको ब्रह्मा मानते हो। स्त्रीको यह भावना कराते हो कि यह तेरा पति है—विवाह होनेके बाद उसमें पतिभावना हो जाती है। स्त्री और पुरुषमें जन्मसिद्ध सम्बन्ध नहीं था। सम्बन्ध किया है, वैसे भगवान्‌से अपना सम्बन्ध मान ले। हमारा तो उनके साथ जन्मसिद्ध सम्बन्ध है। वह यदि भूल गया है तो मान ले।

❑❑

भरतजीका भगवान् राममें प्रेम

कल भगवान्‌की लीलाके विषयकी बात कही थी, आज भगवान्‌के प्रेमकी बात कही जाती है। द्वापरयुगमें श्रीकृष्णके प्रति सबसे ऊँचा प्रेम गोपियोंका समझा जाता था। त्रेतायुगमें रामके प्रति लक्ष्मण और भरतका प्रेम बहुत अच्छा समझा जाता था। कोई लक्ष्मण और कोई भरतके प्रेमकी सराहना करते हैं। लक्ष्मणका प्रेम प्रारम्भसे ही ज्यादा था। भरतका प्रेम, जब भरतने राज्यको ठुकरा दिया, तबसे बढ़ा। भगवान् श्रीराम वनमें जाने लगे तो माता कैकेयीके प्रति जो शब्द उन्होंने कहे, उनको सुननेसे भी हृदयमें प्रेम प्रवेश कर जाय, फिर भरतकी तो बात ही क्या है। राजा दशरथजी शोकातुर पड़े हुए हैं, भगवान् रामचन्द्रजी बुलाये गये। माता कैकेयीसे भगवान् पूछते हैं—माता! पिताजीको इतना शोक क्यों हो रहा है? कैकेयीने सब बात कह दी। रामने सुनकर कहा कि मेरे लिये तो यह मंगलमय विधान है। हे जननी! इसमें पिताजीको इतना शोक करनेकी क्या आवश्यकता है? वनमें मुझे ऋषियोंके दर्शन होंगे, पिताकी आज्ञाका पालन होगा, उसमें आपकी सम्मति भी है और सबसे बढ़कर बात तो यह है कि मेरे प्यारे भाई भरतको राज्य मिलेगा। ऐसा अवसर पाकर भी मैं वनमें न जाऊँ तो दुनियामें मेरे समान मूर्ख और कौन होगा? ऐसा कहकर भगवान् प्रसन्नतापूर्वक वनमें चले गये।

श्रीराम वनमें चले गये और रामके वियोगमें राजा दशरथके प्राण चले गये। तब वसिष्ठजीने भरतको बुलानेके लिये ननिहाल दूत भेजा। भरतजीने देखा कि गुरुजीकी आज्ञा है तो भरतने विचार किया कि गुरुजी भी मन्त्री हैं, पिताजीने नहीं बुलाया तो भी कोई बात नहीं। भरतजी आये, शहरमें देखा, सब सुनसान

प्रवचन—दिनांक २३। ३। १९४७, प्रात:काल ७॥ बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

था, किसीने भरतको प्रणामतक नहीं किया। भरत माता कैकेयीके भवनमें आये, क्योंकि वे जानते थे कि पिता वहीं होंगे। पिताजीको वहाँ नहीं देखकर मातासे पूछा, पिताजी कहाँ हैं? कैकेयीने हृदय कठोर करके कहा—तुम्हारे पिता उत्तम कर्म करनेवाले जिस गतिको प्राप्त होते हैं, उस गतिको चले गये। यह सुनकर भरतको बड़ा दुःख हुआ कि मरते समय मेरे पिता मुझे ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामचन्द्रजीको सौंपकर नहीं गये। वे बेहोश हो गये और जब होशमें आये तो भरतने पूछा—अन्तकालमें पिताजीने क्या कहकर प्राण त्यागे? माताने कहा—हा राम, हा लक्ष्मण, हा सीते! ऐसा कहते हुए प्राण त्यागे। तब भरत और भी शंकित हुए और पूछा—क्या वे पासमें नहीं थे? तब कैकेयीने कहा—मैंने राजा दशरथसे दो वर, जो थातीके (धरोहर) रूपमें पड़े थे वे माँगे थे, एकसे तुमको राजगद्दी और दूसरेसे रामको चौदह वर्षका वनवास। इसपर राम तो वनमें चले गये, सीता और लक्ष्मण भी उनके साथ चले गये। रामके विरहमें महाराजके प्राण चले गये। यह बात सुनकर भरतको बड़ा क्रोध आया। कहा—तू कौन है? तू यहाँसे चली जा। रामको वनमें भेजकर तू मुझसे सुखकी आशा रखती है, यह सुख तुझे नहीं मिलेगा। मेरे ज्येष्ठ भ्राता रामके रहते मैं कभी राज्य नहीं करूँगा। तेरा सब मनोरथ निष्फल होगा। रामने तेरा क्या अहित किया जो तूने उनको बिना ही कारण वन भेज दिया, वे तो तुझे माँसे भी बढ़कर समझते थे। तेरे मनमें यह भाव आया ही क्यों? जब तेरे मनमें यही भाव था तो तू बाँझ ही क्यों न रह गयी या जन्मते ही मुझे मार क्यों न डाला। भरतके ऊपर मानो दुःखका पहाड़ टूट पड़ा हो। वे दुःखी हो गये और विलाप करने लगे। इतनेमें मन्थरा आ गयी। सन्तरीने कहा—यह सब इस मन्थराकी करामात है। यह सुनकर शत्रुघ्नजी

उठे और उसके सिरके बाल पकड़कर घसीटने लगे। वह चिल्लाने लगी कि हे कैकेयी! मैंने तेरा कौन-सा अहित किया था। भरतने शत्रुघ्नको मना किया कि इसे जानसे मत मार डालना। यदि तू स्त्रीको मार डालेगा तो रामजी तुझे स्त्री-हत्यारा समझकर त्याग देंगे। बादमें भरत माता कौसल्याके भवनमें गये। माताने कहा—लाल! तूने माता कैकेयीकी करनी सुनी? यह सुनकर भरत रोने लगे। कहा—माता! यह बात कहकर मुझे जला मत। भरतने अनेक प्रकारकी सौगन्ध खायी कि रामको वन भेजनेकी मेरी सम्मति नहीं थी। भरत रोने और विलाप करने लगे। माता कौसल्याने उनके आँसू पोंछे और कहा—भरत, तू मत रो। जब राम वनमें जाने लगे, तब मुझसे कहा था कि मेरा भाई भरत मेरेसे भी बढ़कर तेरी सेवा करेगा। वह बात सच्ची है, बेटा, तू विलाप मत कर। पूर्वमें मैंने पाप किये थे, जिसके फलस्वरूप यह अवसर आया। माताकी आज्ञासे भरतने पिताजीकी और्ध्वदेहिक क्रिया की, तर्पण किया। फिर भरतजीसे वसिष्ठजीने कहा—भरत, आज अच्छा दिन है, तुम राजगद्दीपर बैठो। सब तुम्हारा राजतिलक देखना चाहते हैं, अतएव आज ही राजतिलक हो जाय। यह सुनकर भरत रोने लगे और गुरुजीसे बोले—मैं आपकी इस आज्ञाको माननेमें लाचार हूँ। मैं आपकी इस आज्ञाका उल्लंघन कर रहा हूँ, मैं पापी हूँ। हमारे कुलकी यह रीति है कि बड़े भाईके रहते छोटा भाई राजगद्दीपर नहीं बैठता। माता कौसल्याने कहा—बेटा, तू मेरी आज्ञाको मानकर गद्दीपर बैठ। मेरी और गुरुजीकी इच्छा है। भरतने कहा—माता, मैं इस विषयमें लाचार हूँ। आप दुखिया हैं। मैं आपकी आज्ञाको नहीं मान रहा हूँ। मेरे लिये यह असम्भव है कि मैं राजगद्दीपर बैठूँ। मैं प्रातःकाल भगवान् रामको वापस लानेके लिये जाऊँगा। इसमें

आप मदद करें तो बहुत अच्छा होगा। भरतकी इस बातको सुनकर सब प्रसन्न हो गये और भरतकी प्रशंसा करने लगे। प्रातःकाल होते ही वनमें जानेकी सब लोग तैयारी करने लगे।

भरत पैदल ही जाने लगे। सबने विचार किया कि यदि भरतजी पैदल चलेंगे तो समय अधिक लगेगा। सबने माता कौसल्यासे कहा—भरतजी पैदल चलेंगे तो सब लोग भी पैदल चलेंगे, जिससे समय अधिक लग जायगा। अतएव आप भरतको सवारीपर चढ़नेके लिये कह दें। माता कौसल्याने भरतसे कहा तो भरतजी बोले—माता, मैं बार-बार आपकी बात काटता हूँ, मैं महापापी हूँ, दुःखकी बात है, मेरे लिये मरणके समान है। मैं रघुनाथजीका सेवक हूँ, जब भगवान् पैदल वनमें गये तो मेरा कर्तव्य है कि मैं सिरके बल जाऊँ। माताके समझानेपर अन्तमें भरतजी सवारीपर बैठे।

आगे गये, गुहने बड़ी भारी सेनासहित भरतको आते देखा तो अपने स्वजनोंको बुलाकर कहा कि तुमलोग सचेत रहना। मैं भरतके भावकी परीक्षाके लिये जाता हूँ। यदि भरतका भाव ठीक होगा तो गंगाके पार कर देंगे, नहीं तो सेनासहित डुबो देंगे। भेंट लेकर भरतके पास गुह आया। गुहने भरतसे पूछा—आप इतनी बड़ी सेना लेकर जा रहे हैं, रामके प्रति आपका क्या भाव है? कहीं आपका बुरा भाव तो नहीं है! यह सुनकर भरत रोने लगे, कहा—मेरा दुर्भाग्य है कि मैं कैकेयीका पुत्र हूँ। मेरे लिये जितना दोष लगाया जाय उतना थोड़ा है। मैं रामको वनसे वापस लौटानेके लिये आया हूँ। गुहसे बोले—हे गुह! मैंने सुना है कि एक रात्रि भगवान् रामने यहाँ शिंशुपाके नीचे निवास किया था, वह स्थान मुझे दिखाओ। यह बात सुनकर गुह बड़े प्रेममें पानी-पानी हो गया। गुहने वह स्थान दिखाया। वहाँपर जगज्जननी

सीताके वस्त्रके तारे गिरे हुए दीखे। यह देखकर भरत और विलाप करने लगे, जो सीता महलोंमें निवास करनेवाली थी, वह मेरे कारण भूमिपर सोयी। यह सब मेरे कारणसे हुआ। गुहने भगवान्‌के विषयकी सब बात कह सुनायी।

भरत भरद्वाजके आश्रमपर पहुँचे। भरद्वाजने पूछा—भरत! तुम कहाँ जा रहे हो? यह सुनकर भरत रोने लगे कि आपका यह पूछना यथार्थ है, क्योंकि मैं कैकेयीका पुत्र हूँ। भरद्वाजने कहा—भरत! मैं तपोबलसे यह जानता हूँ कि तुम रामको वनसे वापस लानेके लिये जा रहे हो। मैंने जो तप किया था उसके फलस्वरूप मुझे भगवान् रामके दर्शन हुए और रामके दर्शनोंका फल तुम्हारा दर्शन है, मैं धन्य हूँ। हे भरत! तुम्हारे प्रेमकी प्रशंसा तो स्वयं भगवान्‌ने भी की है। मैं प्रार्थना करता हूँ कि एक रात्रिभर यहाँ भगवान् रामने निवास किया था, अतएव आप भी एक रात्रि यहाँ निवास करें। भरतको एक-एक क्षण युगके समान लगता था, पर वे ठहर गये। ऋषिकी आज्ञासे ऋद्धि-सिद्धियोंने भरतका और सब सेनाका खूब सत्कार किया। वहाँपर भरत और शत्रुघ्नको छोड़कर सबकी रहनेकी रुचि हो गयी। भरत वहाँसे चले। भरतके साथ गुह भी गये। (विस्तारसे कथा गीताप्रेससे प्रकाशित 'रामायणके आदर्श पात्र' एवं 'आदर्श भ्रातृप्रेम' नामक पुस्तकोंमें देखनी चाहिये।)

❑❑

द्रष्टाके ध्यानसे स्वरूपकी प्राप्ति

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति॥ (गीता १४। १९)

जिस समय द्रष्टा तीनों गुणोंके अतिरिक्त अन्य किसीको कर्ता नहीं देखता और तीनों गुणोंसे अत्यन्त परे सच्चिदानन्दघनस्वरूप मुझ परमात्माको तत्त्वसे जानता है, उस समय वह मेरे स्वरूपको प्राप्त होता है।

पंचभौतिक शरीरसे इन्द्रियाँ पर हैं, इन्द्रियोंसे पर मन है, मनसे पर बुद्धि है, बुद्धिसे अत्यन्त पर आत्मा है। पंचभूतोंमें भी आकाश चारों भूतोंमें पर है। आकाश परमात्माके मनके संकल्पमें है। संकल्पका घेरा आकाशके परे है। मनका संकल्प है, मन समष्टि अहंकारके अन्तर्गत है। अहंकार महत्तत्त्वके अन्तर्गत है, महत्तत्त्व अव्याकृत मायाके अन्तर्गत है। अव्याकृत माया उस परमात्माके अन्तर्गत है। संसारमें जो कुछ क्रिया हो रही है, वह सब प्रकृतिके गुणोंके द्वारा होती है। गुण ही गुणोंके अन्तर्गत बरत रहे हैं। पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ अपने-अपने विषय—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धमें बरत रही हैं। यह सब प्रकृतिका ही विस्तार है। प्रकृतिसे गुण उत्पन्न हुए, गुणोंसे सबका विस्तार है। गुण ही गुणोंमें बरत रहे हैं, आत्मा इन सबसे परे है। नेत्रेन्द्रिय रूपको देख रही है या यों कह दो कि गुण ही गुणोंमें बरत रहे हैं। इन्द्रियोंकी वृत्तिद्वारा दृश्यवर्ग जाना जाता है। बुद्धिसे परे परमात्मा है, अतएव परमात्मा सबसे परे है।

इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयोंमें बरत रही हैं। मन पाँचों इन्द्रियोंको देखता है, बुद्धि मन और इन्द्रियोंको देखती है। बुद्धिसे

प्रवचन—दिनांक २३। ३। १९४७, सायंकाल ६.१५ बजे, गंगा किनारे, स्वर्गाश्रम।

परे आत्मा है, वह सबको देखता है और आत्माको ये सब कोई नहीं देख सकते। '**अनुपश्यति**' में 'अनु' पीछे होकर, घेरकर देख रहा है। आत्मा यावन्मात्रको देख रहा है कि गुण ही गुणोंमें बरत रहे हैं। वह सबका साक्षी, चेतन और द्रष्टा है—देख रहा है। इस प्रकार देखनेका भाव आ जाता है। आत्मा सूक्ष्म, श्रेष्ठ और बलवान् है। भगवान् कहते हैं, ऐसा जो जानता है, वह मेरे भाव अर्थात् स्वरूपको प्राप्त हो जाता है।

ऐसा देखना शरीरमें स्थित रहकर और शरीरसे बाहर होकर हो सकता है। ब्रह्मके स्वरूपमें स्थित होकर देखना होता है। शरीरमें ऐसे देखे कि जो कुछ दीख रहा है वह सब द्रष्टाके आधीन है। ज्ञाता द्रष्टाके आधारपर ज्ञेय है। ज्ञाताको कोई जान नहीं सकता क्योंकि वह अति सूक्ष्म है। जो कुछ प्रतीत होता है वह ज्ञाताके संकल्पमें है। स्वप्नमें एक स्वप्नका शरीर है। वह प्रतीतिकालमें एक शरीर है और दूसरे सब शरीर और दृश्य अपनेसे भिन्न हैं। पर जाग्रत्में आकर देखे तो सब-का-सब संसार अपने संकल्पके आधारपर ही है, वैसे ही ज्ञान होनेके उत्तरकालमें यह प्रतीत होता है कि सारा ब्रह्माण्ड उस परमात्मामें है, इस प्रकार द्रष्टा साक्षीका ध्यान है।

ब्रह्मके साथ आत्माकी एकता करके यह देखे कि जो कुछ क्रिया हो रही है, वह मायामात्र है—मेरे संकल्पके आधारपर है, उत्पत्ति-विनाश मेरे अन्तर्गत हो रहा है। आत्मा ही संसारके रूपमें दीख रहा है। ज्ञाता पुरुष ही ज्ञेयके रूपमें होकर अपने-आपको देख रहा है। पुरुष आप ही अपनी रचना करके बुद्धिवृत्तिके द्वारा देख रहा है। वस्तुसे आत्मा ही बुद्धिवृत्तिके द्वारा दीख रहा है। जैसे आकाशमें बिजली चमकती है, कड़कती है, शब्द होता है, पानी बरसता है, बादल होते हैं—ये सब आकाशमें होकर

आकाशमें विलीन हो जाते हैं। आकाश वास्तवमें निर्लेप है, इसी प्रकार आत्मा निर्लेप है। आत्मा इन सबमें अनुस्यूत होकर भी इन सबसे लिपायमान नहीं है। तीनों गुण ही अपने-आपमें बरत रहे हैं। शरीर एवं ब्रह्माण्डको घेरे हुए और भीतर अनुस्यूत होकर भी आत्मा निर्विकार है। जैसे आकाशका दृष्टान्त दिया, वैसे ही अन्त:करणका दिया जाता है। जैसे अन्त:करणमें संकल्प पैदा होता है तो वह अन्त:करणकी कल्पना ही है और सारा संकल्प अन्त:करणमें है। अन्त:करण उससे लिपायमान नहीं होता।

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते॥ (गीता १३।३१)

आत्मा अनादि और निर्गुण होनेसे शरीरमें रहते हुए भी लिपायमान नहीं होता। आत्मा परिपूर्ण है, आच्छादित बाहर-भीतर रहते हुए न तो कर्ता है और न लिपायमान ही होता है।

स्वप्नका संसार स्वप्नके अन्तर्गत है, वैसे ही यह सारा ब्रह्माण्ड परमात्मामें या यों कहो आत्माके अन्तर्गत है। जैसे आकाश चारों भूतोंके भीतर और अनुस्यूत भी है, वैसे ही मन आकाशके अन्दर और बाहर भी है। अहंकार मनके अन्दर अनुस्यूत तथा अलावा भी है। महत्तत्त्व अहंकारके बाहर-भीतर अनुस्यूत है। अव्याकृत माया महत्तत्त्वके अन्दर अनुस्यूत और बाहर भी है। आत्मा और ब्रह्म एक है, चेतन है, उसके संकल्पके आधारपर सारा ब्रह्माण्ड है, संकल्प उठा दे और संकल्प उठानेवाली वृत्तिको भी उठा दे।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥ (गीता ६।२९)

सर्वव्यापी अनन्त चेतनमें एकीभावसे स्थितरूप योगसे युक्त आत्मावाला तथा सबमें समभावसे देखनेवाला योगी आत्माको सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित और सम्पूर्ण भूतोंको आत्मामें कल्पित देखता है।

ब्रह्ममें जिसकी आत्मा अभिन्नरूपमें स्थित हो गयी है वह पुरुष समष्टि बुद्धि, शुद्ध बुद्धिसे सब भूतोंको अपने अन्तर्गत देखता है। आत्मा नित्य है, संसार अनित्य है। संसार उत्पन्न होता है और विनाश होता है। आत्मा चेतन है, सारे भूतोंमें आत्मा है। सब भूतोंको आत्माके संकल्पके आधारपर देखता है और सारे भूतोंमें आत्माको नित्य सत् देखता है, इस प्रकार देखे। शरीर और संसारसे किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं, द्रष्टा साक्षीमात्र समझे। चेतन आत्मा अनन्त है, उसमें जो कुछ ज्ञेय है वह अल्प है, सबको अपने अन्तर्गत देखे—

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति॥ (गीता १४। १९)

जैसे आँख खुलनेपर स्वप्नके सारे संसारका अत्यन्ताभाव हो जाता है, वैसे ही ज्ञान होनेके उत्तरकालमें संसारका अत्यन्ताभाव हो जाता है। तब वह मद्भावको अर्थात् परमात्माको प्राप्त हो जाता है। जैसे जाग्रत् होनेके बाद स्वप्नके शरीरमें कोई प्रवेश करना चाहे तो नहीं कर सकता, क्योंकि स्वप्नका शरीर और संसार सब अपना ही शरीर था। वैसे ही ज्ञान होनेके उत्तरकालमें अपनी आत्माको वह केवल अपने शरीरमें ही नहीं अपितु सब भूतोंमें व्यापक देखता है।

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते॥ (गीता १४। २०)

यह पुरुष शरीरकी उत्पत्तिके कारणरूप इन तीनों गुणोंको उल्लंघन करके जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और सब प्रकारके दुःखोंसे मुक्त हुआ परमात्माको प्राप्त होता है। इन सबसे मुक्त होकर वह परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

❑❑

भगवान्‌का तत्त्व-रहस्य

भगवान् अपने तत्त्व-रहस्यकी बात बताते हैं—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥ (गीता ४।९)

हे अर्जुन! मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् निर्मल और अलौकिक हैं—इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्वसे जान लेता है, वह शरीरको त्यागकर फिर जन्मको प्राप्त नहीं होता, अपितु मुझे ही प्राप्त होता है।

भगवान्‌के जन्म और कर्मका तत्त्व-रहस्य जाननेसे मनुष्य मुक्त हो जाता है। जन्मका तत्त्व क्या है? पूर्वमें भगवान्‌ने बतलाया है—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप॥ (गीता ४।५)

हे परन्तप अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत-से जन्म हो चुके हैं। उन सबको तू नहीं जानता, किंतु मैं जानता हूँ। आपके जन्ममें क्या विशेषता है, यह बताते हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥ (गीता ४।६)

मैं अजन्मा और अविनाशी स्वरूप होते हुए भी तथा समस्त प्राणियोंका ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृतिको अधीन करके अपनी योगमायासे प्रकट होता हूँ।

जबतक सगुण साकार भगवान्‌को तत्त्वसे नहीं जानते, तबतक भगवान्‌के निकट रहते हुए भी भगवान् अप्राप्त हैं। श्रद्धाकी कमीके कारण भगवान् अपरोक्ष एवं अप्राप्त हैं। श्रद्धाकी कमीके

प्रवचन—दिनांक २४। ३। १९४७, प्रात:काल ७.३० बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

कारण भगवान्‌का अपरोक्ष ज्ञान नहीं होता। अपरोक्ष ज्ञान यह है कि परमात्माको यथार्थरूपसे जान लेना। ब्रह्मको जान लेनेके बाद ब्रह्म ही बन जाता है। ईश्वर और महात्मा छोड़नेकी वस्तु नहीं, तत्त्व समझनेसे उनको प्राप्त हो जाता है।

स्वप्नमें भगवान्‌के दर्शन होनेका उपाय—

सोनेके पूर्व भगवान्‌का स्वरूप, लीलाका स्मरण करते हुए सोये तो किसी दिन रात्रिमें भगवान्‌के दर्शन हो सकते हैं।

मन्दिरोंमें भगवान्‌के दर्शन करने जायँ तो मन्दिरोंकी सजावटकी तरफ खयाल न करके भगवान्‌के स्वरूपको शास्त्रोंके अनुसार जो गुण, सौन्दर्य, माधुर्य बताये गये हैं, उनकी तरफ लक्ष्य करे। सौन्दर्य, माधुर्यकी तरफ खयाल करके फिर भगवान्‌के लीला-चरित्रोंको याद करे। लीला-चरित्रमें गुणका अनुभव करे, गुण-भाव क्रियासाध्य है। क्रियासे गुण-भावका पता लगता है। व्यवहारसे भावका पता लगता है। व्यवहार चरित्र है, इनसे गुणोंकी सिद्धि होती है। भगवान्‌के चरित्रोंसे गुणकी स्मृति होती है, नहीं हो तो भाव करना चाहिये। गुणोंसे प्रभावका पता चलता है। मन्दिरकी मूर्तिकी अपेक्षा भगवान्‌के चरित्र महत्त्वपूर्ण हैं, चरित्रसे ज्यादा दामी भगवान्‌के गुण और प्रभाव हैं। गुण-प्रभावका तत्त्व-रहस्य समझमें आ जाय तो वह ज्यादा दामी है।

❑❑

सिद्धान्त एवं रहस्यकी बातें

कई सिद्धान्तकी बातें सुनायी जाती हैं। जिस कामको हम नीचे दर्जेका समझते हैं, जिसे हम करना भी नहीं चाहते, वही काम भावसे ऊँचा हो सकता है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने जो महान् आदर्श पुरुष थे, गीतामें उपदेश दिया है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥ (गीता ३। २१)

श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है, समस्त मनुष्यसमुदाय उसीके अनुसार बरतने लग जाता है।

दो बातें हैं एक महापुरुषके द्वारा निर्णय की हुई बात और दूसरी जो महात्मा खुद उत्तम आचरण करते हैं—उनके अनुसार चलना। अनन्तकोटि ब्रह्माण्डके नायकने कितना कायदा रखा, जो उनको जैसा भजते हैं, उनको वे उसी प्रकार भजते हैं। जो उनको अपना सर्वस्व समर्पण कर देते हैं, भगवान् उनके लिये अपना सर्वस्व समर्पण कर देते हैं। अपने-आपतकको दे डालते हैं। छोटे-बड़ेका भाव भगवान्‌के हृदयमें नहीं है। भगवान् समझते हैं कि आत्माकी दृष्टिसे जीवमें कोई भेद नहीं है, क्योंकि आत्मा एक है। यह उच्चकोटिका सिद्धान्त है। हमें भी यह सिद्धान्त रखना चाहिये कि जो अपनेको हमारे समर्पण कर देता है, हमें भी अपने-आपको उसके समर्पण कर देना चाहिये। प्रेमका बदला रुपया-पैसा नहीं है। जीवनका बदला (मूल्य) जीवन है। प्रेमके बदलेमें रुपया दे देना ठगाई है। भगवान् प्रेमके बदले धन

प्रवचन—दिनांक २५। ३। १९४७, प्रात:काल ७.३० बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

देते हैं तो यह बधाऊ (अतिरिक्त) देना है। वे अपनी भक्ति भी देते हैं। जैसे—ध्रुवको राज्य दिया और अपनी भक्ति भी। जो ठगता है वह ठग है और जो ठगाता है वह ठाकुर कहलाता है। ऐसा होना चाहिये। सबके साथ उदारताका बर्ताव करना चाहिये।

युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें भगवान्‌ने क्या काम किया? ब्राह्मणोंके चरण धोना और जूठी पत्तल उठाना—यह काम किया। भगवान् जब यह काम करते हैं तो यह काम छोटा नहीं, बड़ा हो गया। अपनी इच्छासे पत्तल उठाते हैं, जिसकी पत्तल उठाते हैं, उसको पाप नहीं लगता। यदि वह पाप समझे तो खुद उठा लो। उठानेवालेको फायदा होता है और जिसकी उठाते हैं उसको नुकसान होता है। बात तो सच्ची कहनी चाहिये। हम वटवृक्षके नीचे बैठते हैं तो वटवृक्षका हमारे ऊपर ऋण है, इसकी सेवा करना हमारा धर्म है। हमको इसके ऋणसे मुक्त होनेके लिये इसमें जल डालना चाहिये। जल डालना सेवा है। सेवाके कामको बहुत आदर देना चाहिये। सेवा उच्चकोटिकी चीज है। महर्षि वेदव्यासजीने शूद्रको धन्य बताया, क्योंकि एक ही कामसे उसका कल्याण हो जाता है। उन्होंने स्त्रीको भी धन्य कहा, क्योंकि स्त्री पतिव्रत-धर्मसे, ईश्वरकी सेवासे, भक्तिसे परमगतिको प्राप्त हो जाती है। सुहागिन स्त्रीको भी भगवान्‌की भक्तिसे परमगतिकी प्राप्ति हो जाती है। यह बात विशेष है। पतिके मरनेके बाद पतिके आदेशका पालन करती है तो वह भी उत्तम गतिको प्राप्त हो जाती है। स्त्री पतिव्रता हो, पति पापी हो तो पतिव्रताके प्रभावसे उस पतिकी उत्तम गति हो जाती है। पतिव्रताकी उत्तम गति होती है, पति यदि पापके कारण नरकमें जाय तो पतिव्रताके प्रभावसे वह भी उत्तम गतिको प्राप्त हो जाता है। पतिव्रता पतिसहित उत्तम गतिको जाती है, यह सिद्धान्त है।

बन्दा सत नहिं छाँड़िये सत छाँड़े पत जाय।
सत की बाँधी लक्ष्मी फेर मिलेगी आय॥

जिस कामका कोई ग्राहक नहीं हो उसको हमें करना चाहिये।

भरतजीने हनुमान्से पूछा—तुम कौन हो? हनुमान्जीने जवाब दिया। मैं श्रीरघुनाथजीके दासोंका दास—किंकर हूँ। हनुमान्जी अपनेको सुग्रीव, अंगद, जामवन्तका भी दास मानते हैं। लंकामें भी यही कहा—मैं रघुनाथजीके दासोंका दास हूँ। अंगदने भी रावणसे कहा था—लंकामें जो बंदर आकर आग लगा गया था वह तो मेरा एक किंकर था। महावीरके कितने ही उपासक हैं और उनके नामपर बहुत-सी संस्थाएँ हैं। हनुमान्जीको दासभाव प्रिय है, सखाभाव नहीं। वह तो कहते हैं, मैं तो सुग्रीवका दास हूँ, सखा नहीं। सुग्रीव तो भगवान्के सखा थे, अतएव संसारमें सुग्रीवकी पूजा नहीं हो रही है, हनुमान्जीकी हो रही है। जो अपने-आपको बड़ा मान लेता है, वह सबसे नीचा है, उसकी अधोगति होती है। जो अपनेको नीचा समझता है, उसको भगवान्की प्राप्ति होती है।

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

यह भगवान्के अनन्य भक्तका लक्षण है। भगवान् कहते हैं—ऐसे भक्तके पीछे-पीछे मैं जाता हूँ, जिससे उनके चरणोंकी धूलि मेरे मस्तकपर पड़े और मैं पवित्र हो जाऊँ। दुर्वासाके प्रति भगवान्ने कहा—'**अहं भक्तपराधीनः**' मैं अपने अपराधीको क्षमा कर सकता हूँ, पर मेरे भक्तके अपराधीको क्षमा करनेमें मैं असमर्थ हूँ। मेरे अपराधीको भक्त क्षमा कर सकता है। अम्बरीष तो हाथ जोड़े खड़े हैं, वे सुदर्शनसे प्रार्थना करते हैं कि आप ब्राह्मणपर क्षमा करें। राजा अम्बरीषका भाव था सबके

चरणोंका सेवक बनकर रहना। फिर क्रोधकी मूर्ति दुर्वासाको भी अम्बरीषके विनयकी प्रशंसा करनी पड़ी। यह सिद्धान्तकी बात है। नीचे-से-नीचा काम हो, जिसे करनेके लिये कोई नहीं मिले, उसे अपने करनेके लिये पहला नम्बर ले। बीमारीसे हम घृणा करते हैं तो भगवान् हमारेसे दूर भागते हैं। बीमारी भी भगवान्का स्वरूप है या यों समझे कि भगवान् उसके अन्तर्गत हैं, इसलिये उसकी सेवा भगवान्की सेवा है। आतुरताके समय दान देनेका बड़ा महत्त्व है। आतुर चाहे पशु हो, उसकी सेवा करनी चाहिये। यह सिद्धान्तकी बात, कीमती बात है। भगवान् अपने असली रूपमें आयें और उनको भोजन करायें, इस बातको इतना महत्त्व नहीं देकर एक अतिथि अभ्यागत जो आतुर हो, उसके रूपमें भगवान् आये हैं, ऐसा मानकर इनको विशेष आदर देना चाहिये। शास्त्रोंमें ऐसी अनेकों कथाएँ आती हैं, जहाँ भगवान् इसी प्रकारके रूपमें मिले।

भगवान्की यह कृपा है कि सात्त्विक पुरुषके अन्तकालमें तामसी स्मृति हुई तो उसको अधिक नुकसान नहीं होता, परन्तु तामसी पुरुषको अन्तकालमें सात्त्विक स्मृति होगी तो अधिक लाभ ही होगा। जबतक परमात्माकी प्राप्ति नहीं हो तबतक साधकको विशेष सावधान रहना चाहिये कि किसी कारणसे कहीं फँसाव न हो जाय। जड़भरत राजर्षि थे। हिरणमें थोड़ी आसक्ति हो गयी तो कुछ बाधा आ गयी। दूसरोंके लिये भी सकाम प्रार्थना नहीं करनी चाहिये, क्योंकि उससे अलौकिक शक्ति नष्ट होती है।

मेरेसे कोई पूछे कि तुम्हें परमात्माकी प्राप्ति हुई या नहीं, तो मैं यही कहूँगा कि मैं नहीं बताता। कोई बीमार है वह पूछे कि मैं मरूँगा या नहीं, तो प्रायः मैं नहीं बताता। नहीं बतानेमें लाभ है,

क्योंकि भगवान्‌को यह बताना होता तो वे खुद ही पहलेसे बता देते। नहीं बतानेमें लाभ है। यदि कहें कि मर जायगा तो वह दवा आदि साधन नहीं करेगा, यदि कहें नहीं मरेगा तो भी साधन नहीं करेगा। शास्त्रोंमें यह बात आती है कि मरनेवालेको बता भी देते हैं और नहीं भी। मैं यह नहीं कहता कि जो बता देते हैं वे भूल करते हैं। यह तो महात्माकी बात है। मैं कहूँ कि मुझे परमात्माकी प्राप्ति नहीं हुई तो हजारों लोगोंको निराशा हो जायगी कि जब इसको भी प्राप्ति नहीं हुई तो साधन क्यों करें? यदि कहें कि हो गयी तो श्रद्धालुकी बात छोड़ दें, किंतु जो अश्रद्धालु हैं, वे कहेंगे कि ये बड़े हैं—ऐसे हँसी होगी। यदि उनमें निर्णय करनेकी शक्ति है तो पूछे ही क्यों? और यदि निर्णय करनेकी शक्ति नहीं है तो पूछनेसे लाभ ही क्या है। यदि विश्वास है तो जो गीता, शास्त्र, महात्मा कहते हैं, वही मैं कहता हूँ। गीताकी बातको आप या मैं जो माने उसे लाभ है। कोई भी काममें लाये। गीतामें जो बातें बतायी गयी हैं, वे ठीक हैं। भगवान्‌की बात ठीक है। उनपर विश्वास करो तो वैसा मानो, यदि मेरे वचनोंपर विश्वास है तो गीता जो बात कहती है वही मानो।

आदमीको निराश नहीं होना चाहिये। सुधन्वाका अर्जुनके साथ युद्ध हुआ। बार-बार हिम्मत दिलाकर भगवान्‌ने अर्जुनसे युद्ध कराया। इस तरह हिम्मत रखे। हिम्मत दिलानेसे एक कायर भी शूरवीर हो जाता है। युद्धके समय चारण लोग बहुत हिम्मत दिलाते हैं। किसी भी देवताको देख लो, पूर्ण ब्रह्म परमात्माकी भाँति उसकी स्तुति गायी जाती है, जिससे देवताओंमें जोश आता है। गीतामें भी भगवान्‌ने अर्जुनके प्रति जितने विशेषण दिये—महाबाहो, सव्यसाचिन् आदि, उनसे एक कायर भी शूरवीर बन जाता है।

प्रश्न—पाप एकदम नष्ट होते हैं या धीरे-धीरे?

उत्तर—धीरे-धीरे नष्ट होनेका तो कानून है ही, पर एक साथ भी नष्ट हो जाते हैं। आदमीको बीमारी हो जाय तो आहिस्ते-आहिस्ते भी मरता है और कोई-कोई हार्ट फेल होकर तत्काल भी मर जाता है। अभी भूकम्प आया और काफी लोग मर गये, प्रारब्ध था तभी तो मर गये। शरीरमें मरनेका कोई चिह्न नहीं था, तब भी मर गये और शनैः-शनैः बीमारीसे भी मरते हैं।

महापुरुषोंकी बातोंसे भी एकदम भ्रम मिट जाता है। ज्ञानके मार्गमें बात समझमें आ गयी तो काम बन गया। भक्तिके मार्गमें भाव बदला और तुरन्त भगवान् मिल गये। एक कथा नारदजी तथा एक वटवृक्षके नीचे रहनेवाले एक भक्तकी आती है। भगवान् मुझे मिलेंगे यह जानकर वह मस्त होकर कीर्तन करने लगा। भगवान् तत्काल प्रकट हो गये। सात्त्विक वृत्तिमें एकदम ध्यान लग गया तो परमात्मा मिल गये। महात्माके संगसे, शास्त्र तथा पुस्तकें पढ़नेसे एकदम भाव बदल सकता है। आपत्तिकालमें गजेन्द्रने भगवान्‌को पुकारा तो भगवान् आ गये।

प्रश्न—यह स्थिति कैसे पैदा हो?

उत्तर—सत्संग, भारी संकट, ईश्वरकी कृपा, पुस्तक पढ़ने, जप करने, ध्यान करनेसे यह स्थिति पैदा हो जाती है। जब-जब ऐसी वृत्ति हो तो जोरसे साधन करे। पिंगला वेश्याका दत्तात्रेयके संगसे, अजामिलका भगवान्‌के नामसे झट काम बन गया। शास्त्रोंमें बहुत-से उदाहरण हैं।

बेहोशीके पूर्व जिस बातकी स्मृति होगी उसीकी स्मृति बेहोशीसे होशमें आनेके समय होगी। भगवान्‌की स्मृति बेहोशीके समयके पूर्वमें रहनेके कारण यदि बेहोशीमें ही मृत्यु हुई तो उसकी सद्गति होगी।

न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति॥ (गीता ६। ४०)

हे प्यारे! आत्मोद्धारके लिये अर्थात् भगवत्प्राप्तिके लिये कर्म करनेवाला कोई भी मनुष्य दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता।

कोई भी आदमी अपनी आत्माके कल्याणके लिये कपट-जंजालको छोड़कर परमात्माका भजन करे, यह कल्याणकृत् है, उसका कभी पतन नहीं होता। यह भगवान्‌के भक्तकी बात है। निष्कामभावसे कर्म करे उसका पतन नहीं होता, दुर्गति नहीं होती। वास्तवमें सच्ची नीयतसे भगवान्‌का भजन करे तो पतन नहीं होता—यह बड़े आश्वासनका श्लोक है। '**कल्याणकृत्**' के अन्तर्गत सब आ जाते हैं। 'पार्थ' में आत्मीयता भरी है और 'तात' में प्यार भरा हुआ है।

❑❑

ध्यानकी विधि

सबसे बढ़कर परमात्माका ध्यान है। जो जिसका इष्ट हो—साकार, निराकार, सगुण, निर्गुण कोई भी हो। यहाँका स्थान और समय बड़ा उपयोगी है। सायंकालका समय और संग भी बड़ा अच्छा है। ध्यानमें सहायक भगवान्‌के नामका जप, सत्संग, वैराग्य और उपरति है। परमात्माके नामजपसे वैराग्य होता है। वैराग्य उपरतिसे ध्यान विशेषतासे होता है। निराकारका ध्यान अभेद और भेदरूप दोनोंसे होता है। परमात्मा सब जगह व्यापक हैं, मेरे शरीरमें और बाहर भी सर्वत्र हैं। वे परमात्मा विज्ञानानन्दघनरूप हैं, ज्ञान और आनन्दके सागर हैं, मैं उसमें डूब रहा हूँ। मेरी मन, बुद्धि, इन्द्रियोंमें, रोम-रोममें आनन्द परिपूर्ण हो रहा है। शरीरमें ज्ञानकी बाहुल्यता परमात्मासे है। यद्यपि परमात्मा समान भावसे पूरे शरीरमें व्यापक हैं, पर हृदयदेशमें उनका विशेष प्राकट्य है। सारे शरीरमें प्रसन्नता चेतनताकी जागृति है। यह परमात्माका स्वरूप है।

आनन्द परमात्माका नाम है और स्वरूप है, अतएव **'तज्जपस्तदर्थभावनम्'** करे। आनन्दमय परमात्मा सारे शरीरमें और रोम-रोममें परिपूर्ण हैं। जैसे बर्फके ढेलेको जलमें डुबो दें तो उस ढेलेके बाहर जल है और भीतर भी जल है। वैसे ही आनन्दमय परमात्मा हमारे शरीरमें और बाहर भी हैं। जैसे आकाश बादलमें परिपूर्ण है, वैसे ही सारे शरीरमें वे आनन्दमय परमात्मा रोम-रोममें व्यापक हैं। आकाश जड़ है, किन्तु परमात्मा चेतन है, इतना अन्तर है। इस प्रकार ध्यान करते-करते एक-दूसरेका स्मरण करना अलौकिक विषय है। मैं परमात्माको नहीं छोड़ता तो परमात्मा मेरेको नहीं छोड़ते।

प्रवचन—दिनांक २५।३।१९४७, सायंकाल ६.१५ बजे, गंगा किनारे, स्वर्गाश्रम।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥ (गीता ६। ३०)

जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।

आनन्दमय परमात्माका स्वरूप आनन्द, रस, अमृतका पान करके मैं रसास्वाद ले रहा हूँ। मेरा मन परमात्मामें रमण कर रहा है, यह मनके द्वारा परमात्मामें रमण है। ध्यान करके, अनुभव करके मैं मुग्ध हो रहा हूँ। अमृतका पान करके मैं छक रहा हूँ, मग्न हो रहा हूँ। इस ध्यानमें इतनी तरी है कि इसको कोई छोड़ना चाहे तो छोड़ नहीं सकता। आनन्दका अनुभव, मनन, पान करना अमृतका पान करना है। ऐसे आनन्दकी तरीके समय चिन्ता, भय, शोक पासमें नहीं आ सकते। अज्ञान पासमें नहीं आ सकता। यहाँ आनन्द शान्ति और ज्ञानके रूपमें प्रतीत हो रहा है। यह नित्य, सत्य और शान्तिमय है।

दूसरा प्रकार—परमात्मा ध्येय हैं और साधक ध्याता है। परमात्मा मेरे लिये ध्येय हैं तो परमात्माके लिये मैं ध्येय हूँ—

तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

मैं परमात्माके अनुभवमें हूँ तो मेरे अनुभवमें परमात्मा हैं यह भेद उपासना है। यहाँ ध्याता, ध्यान और ध्येय तीन वस्तु हैं। परमात्मा निराकार हैं पर सगुण हैं, इसलिये वे ध्यानका विषय बन जाते हैं। परमात्मा दिव्य गुणोंसे सम्पन्न हैं। दया, क्षमा, शान्ति, समता ये गुण हैं, इन गुणोंके समूहसहित परमात्मा ध्यानके योग्य हैं।

सगुणके दो भेद हैं—साकार, निराकार। ये दोनों साधकके लिये ध्येय और ज्ञेय हैं। निर्गुण-निराकारका ध्यान नहीं होता

और न ज्ञान ही होता है। जो रूप ध्यानमें आता है वह सगुण-निराकारका रूप आता है। परमात्मा अमृतमयका ध्यान है, रसास्वाद है, यह परम रस है, इनका अनुभव रसास्वाद है। आनन्दका अनुभव अटल है। उत्तरोत्तर आनन्द बढ़ता है। चलते समय यों समझना चाहिये कि शरीर आनन्दमें चल रहा है। वह आनन्द शरीर, इन्द्रियाँ, रोम-रोममें परिपूर्ण है। वह आनन्द चेतन है, आनन्दघन है। चेतनतासे आनन्द भिन्न नहीं, आनन्दका अटल अनुभव ही ध्यान है। इससे प्रसन्नता, सुख मिले, वह रसास्वाद है। इससे तृप्त होवे, हर समय मस्त रहे, मग्न रहे। ऐसे अवसरमें इसको भूले ही कैसे। निराकार परमात्माके ध्यानके पूर्व आसनसे बैठना चाहिये—

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥ (गीता ६। ११)

शुद्ध भूमिमें, जिसके ऊपर क्रमशः कुशा, मृगछाला और वस्त्र बिछे हैं, जो न बहुत ऊँचा है और न बहुत नीचा, ऐसे अपने आसनको स्थिर स्थापन करके बैठे।

यहाँ गंगाका तट, वटका वृक्ष इससे बढ़कर पवित्र क्या है? गंगाकी रेणुकाका पवित्र आसन है जो मखमलके गद्देसे बढ़कर है, सात्त्विक है। इस आसनपर महर्षि पतंजलिके कहे अनुसार **'स्थिरसुखमासनम्'** की तरहसे बैठे, **'समं कायशिरोग्रीवम्'** होकर बैठे, मेरुदण्डको सीधा करके बैठे। नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि रखकर या नेत्र बंद करके ध्यान करे। विक्षेपका अभाव करनेके लिये नेत्रोंकी वृत्ति नासिकाके अग्रभागपर रखे और आलस्य नहीं आये तो नेत्र बन्द करके बैठे। आसन पद्मासन या सिद्धासन जो आसन अपने अनुकूल पड़े उससे बैठे। घण्टा दो घण्टातक सुगमतासे बैठ सके उस आसनसे बैठे।

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च॥
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः॥
अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥
भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥

(गीता १८। ५१—५५)

विशुद्ध बुद्धिसे युक्त तथा हलका, सात्त्विक और नियमित भोजन करनेवाला, शब्दादि विषयोंका त्याग करके एकान्त और शुद्ध देशका सेवन करनेवाला, सात्त्विक धारणशक्तिके द्वारा अन्तःकरण और इन्द्रियोंका संयम करके मन, वाणी और शरीरको वशमें कर लेनेवाला, राग-द्वेषको सर्वथा नष्ट करके भलीभाँति दृढ़ वैराग्यका आश्रय लेनेवाला तथा अहंकार, बल, घमंड, काम, क्रोध और परिग्रहका त्याग करके निरन्तर ध्यानयोगके परायण रहनेवाला ममतारहित और शान्तियुक्त पुरुष सच्चिदानन्द ब्रह्ममें अभिन्नभावसे स्थित होनेका पात्र होता है। फिर वह सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें एकीभावसे स्थित, प्रसन्न मनवाला योगी न तो किसीके लिये शोक करता है और न किसीकी आकांक्षा ही करता है। ऐसा समस्त प्राणियोंमें समभाववाला योगी मेरी परा भक्तिको प्राप्त हो जाता है। उस परा भक्तिके द्वारा वह मुझ परमात्माको, मैं जो हूँ और जितना हूँ ठीक वैसा-का-वैसा तत्त्वसे जान लेता है तथा उस भक्तिसे मुझको तत्त्वसे जानकर तत्काल ही मुझमें प्रविष्ट हो जाता है।

ज्ञाननिष्ठासे ध्यानकी बात भगवान्ने बतलायी है। भगवान्के नाम-स्वरूपके स्मरणमात्रसे मनुष्य पवित्र हो जाता है। इसके बाद सात्त्विक धृतिके द्वारा मनको वशमें करे। ध्यानके लिये एकान्तदेशका सेवन करे, हलका भोजन करे, वाणी, मन और कायाको वशमें रखे। ध्यानमें वैराग्य प्रधान है। ध्यानके पूर्वमें वैराग्यका आश्रय ले। यहाँका दृश्य उत्तम, पवित्र, एकान्त और वैराग्य उत्पन्न करनेवाला है, यहाँ खूब विरक्तचित्त हो जाय। यहाँका दृश्य घरपर याद कर ले तो वहाँ भी वैराग्य पैदा हो सकता है। उपरति और वैराग्यपूर्वक ध्यान करना चाहिये। विषयोंसे आसक्ति हटानेका नाम वैराग्य है और विषयोंसे वृत्ति हटनेका नाम उपरामता है। बादमें अन्तःकरणके दोष अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोधका त्याग करे। 'परिग्रह' बाहरकी चीज है उसका त्याग करे। स्त्री, धन, पुत्र, मकान किसीमें ममता नहीं रखे। शान्तचित्त हो जाय। विक्षेपके अभावका नाम शान्तचित्त है, उसीको उपरति कहते हैं। सांसारिक सुखसे बढ़कर सुख वैराग्यमें है, वैराग्यसे बढ़कर सुख उपरतिमें, उपरतिसे बढ़कर सुख परमात्माके ध्यानमें और परमात्माके ध्यानसे बढ़कर सुख परमात्माकी प्राप्तिमें है। गंगाके किनारेका स्थान बड़ा पवित्र है। जिसका कहीं ध्यान नहीं लगता हो, उसका ध्यान यहाँ लग सकता है। यहाँ ध्यान स्वाभाविक लगता है। संसारको बाध करके, संसारको मायामात्र, क्षणभंगुर नाशवान् समझकर संकल्परहित हो जाय। संसार बिना हुए प्रतीत हो रहा है, जैसे मरुभूमिमें जल बिना हुए प्रतीत होता है। वास्तवमें संसार है नहीं। जैसे दिग्भ्रमवालेको पूर्व दिशा पश्चिम दीखती है और जैसे नेत्रोंके दोषसे शुद्ध आकाशमें जालेसे दीखते हैं, जैसे स्वप्नसे जगनेपर स्वप्नके संसारकी आकृतिमात्र जाग्रत्में प्रतीत होती है, वैसे ही

सब संसारको समझे। संसार है नहीं, मायामात्र समझकर इसका त्याग कर दे। त्यागनेवाली वृत्तिका भी त्याग कर दे, फिर उस विज्ञानानन्दघन परमात्माका ही ध्यान करे। उस विज्ञानानन्दघनकी प्राप्ति होनेपर उस आनन्दको क्या कहा जाय, उसका असली ध्यान ही हो जाय तो भी संसारका अत्यन्ताभाव हो जाता है, कोशिश करनेपर भी संसारकी आकृति नहीं बँध सकती। प्रयत्न करनेपर भी संसारकी स्फुरणा नहीं होती, क्योंकि वह ध्यान रसमय है। उसका कोई ठिकाना नहीं रहता। जैसे आकाश शुद्ध है उसमें कोई विकार नहीं, पर जालेसे दीखते हैं, वैसे ही परमात्मा निर्विकार हैं, उनमें संसार बिना हुए ही प्रतीत हो रहा है। जैसे स्वप्नमें संसार बिना हुए प्रतीत होता है।

जब ध्यान होने लगता है, तब संसारका अत्यन्ताभाव होकर परमात्मा प्रत्यक्ष प्रतीत होने लगते हैं। उस समय ऐसी शान्ति प्रतीत होती है मानो शान्तिके सागरमें डूब गये हों, वहाँ आनन्द-ही-आनन्द प्रतीत होता है। वहाँ चेतनता और ज्ञानका बाहुल्य हो जाता है। उस समय माया और मायाका कार्य कोई पासमें नहीं आ सकता। काम, क्रोध, लोभ, मोहको चैलेंज दे दो, ये पासमें आ नहीं सकते। यह ध्यानके पूर्वकी भूमिका है।

अब आवाहन करना चाहिये। नामका उच्चारण करे। 'नारायण' परमात्माका नाम है और भी अनेक नाम हैं। 'नारायण' का उच्चारण करे उसका अर्थ है सच्चिदानन्द।

'आनन्द' का उच्चारण हो उस समय प्रत्यक्षमें आनन्दकी प्रतीति होने लग जाय। वह चेतन, सत्, चित्, आनन्द है। ज्ञान और ज्ञेय ये ज्ञाताके आश्रित हैं। ज्ञाता नित्य सत् है, प्रकाशस्वरूप, बोधस्वरूप है, चिन्मय है, इनका जहाँ प्रकाश हो वहाँ माया पासमें नहीं आ सकती। परमात्माका असली स्वरूप बुद्धिके भी

समझमें नहीं आता। बुद्धिमिश्रित परमात्माका स्वरूप समझमें आता है। चेतन आत्माका प्रतिद्वन्द्वी प्रकृति है और बुद्धिका प्रतिद्वन्द्वी अज्ञान है। नेत्रोंका प्रतिद्वन्द्वी अन्धकार है। यह चेतन ही मोटारूप होता है तो ज्ञानके रूपमें, और मोटा हो तो नेत्रोंका विषय हो जाता है। ब्रह्मको जनाकर 'ज्ञान' शान्त हो जाता है। **'ज्ञेयम्'** वह परमात्मा जाननेके योग्य है। **'ज्ञानगम्यम्'** वह ज्ञानके द्वारा जाना जाता है। **'हृदि सर्वस्य विष्ठितम्'** परमात्मा सबके हृदयमें विराजमान हैं। वस्तुसे, स्वरूपसे, जातिसे वह परमात्मा एक ही है। ज्ञाताकी चेतनता नित्य है और ज्ञान तथा ज्ञेय पदार्थोंकी चेतनता नित्य नहीं। परमात्मासे ही सब ज्ञेय पदार्थोंका भान होता है। ज्ञेय अल्प है और ज्ञानके अन्तर्गत है। ज्ञान ज्ञाताका विषय है, ज्ञाताका प्रतिबिम्ब है, ज्ञाताके अन्तर्गत है। ज्ञान और ज्ञेयका अभाव होकर केवल एक ज्ञाता ही रह जाता है, वही असली है। परमात्माको सत् इसलिये कहा कि नाश होनेवाले पदार्थोंसे वह विलक्षण है। चेतनसे सत्ता कोई अलग वस्तु नहीं है, चेतन ही आनन्द है, आनन्द उससे कोई भिन्न नहीं और आनन्द ही चेतन है। लौकिक आनन्द उस चेतनका आभास है, वह जड़ है असली नहीं, विनाशशील है। अपने-आपको जाननेवाला नहीं, ब्रह्म ही स्वयं अपने-आपको जानता है। जो ब्रह्मको जानता है, वह ब्रह्म बनकर ही जानता है, खुद ही अपने-आपको जानता है। ब्रह्मकी प्राप्ति, अप्राप्तकी प्राप्ति नहीं है, पहले जो भूल थी वह भूल ही मिटानी है, यह वेदान्तके सिद्धान्तकी बात है।

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः॥ (गीता ६। २१)

इन्द्रियोंसे अतीत, केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिद्वारा ग्रहण

करनेयोग्य जो अनन्त आनन्द है; उसको जिस अवस्थामें अनुभव करता है और जिस अवस्थामें स्थित यह योगी परमात्माके स्वरूपसे विचलित होता ही नहीं।

तामसी सुख—निद्रा, आलस्य, प्रमादसे होता है, वह अन्धकारमय है।

राजसी सुख—इन्द्रियों और विषयोंके संयोगसे जो सुख होता है, वह राजसी है।

सात्त्विक सुख—अन्तःकरण शुद्ध होनेपर ध्यान और वैराग्यसे जो सुख होता है, वह सात्त्विक है।

परमात्मस्वरूप सुख—सबसे विलक्षण है। सात्त्विक सुख मायिक है, जड़ है, बाँधनेवाला है—

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ॥ (गीता १४। ६)

हे निष्पाप! उन तीनों गुणोंमें सत्त्वगुण तो निर्मल होनेके कारण प्रकाश करनेवाला और विकाररहित है, वह सुखके सम्बन्धसे और ज्ञानके सम्बन्धसे अर्थात् उसके अभिमानसे बाँधता है।

आसक्ति बाँधनेवाली है। लौकिक सुखको जाननेवाला, भोगनेवाला दूसरा है, पर ब्रह्मके सुखको जाननेवाला ब्रह्मसे पृथक् नहीं है, खुद ही जानता है और जो पृथक् होकर जानता है वह सगुण ब्रह्मका रूप है। इसके लिये बताया है—

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः॥ (गीता ५। १७)

जिनका मन तद्रूप हो रहा है, जिनकी बुद्धि तद्रूप हो रही है और सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही जिनकी निरन्तर एकीभावसे स्थिति है, ऐसे तत्परायण पुरुष ज्ञानके द्वारा पापरहित होकर अपुनरावृत्तिको अर्थात् परमगतिको प्राप्त होते हैं।

ऐसा पुरुष फिर अपुनरावृत्तिको प्राप्त हो जाता है। स्वप्नसे जगा हुआ पुरुष फिर स्वप्नके संसारमें नहीं जा सकता, वैसे ही परमात्माको प्राप्त हुआ पुरुष संसारमें पुनः नहीं आता। उसकी आत्मा परमात्मामें मिल जाती है। जबतक प्रारब्ध रहता है तबतक इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि रहते हैं। वह आदर्श है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥ (गीता ३।२१)

श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है, समस्त मनुष्यसमुदाय उसीके अनुसार बरतने लग जाता है।

परमात्मा आनन्दमय है, उसका ध्यान करे। इन्द्रियोंको मनमें निरोध करे, मनको बुद्धिमें, बुद्धिको समष्टि बुद्धिमें और समष्टि बुद्धिको शान्त आत्मामें निरोध करे। यह महर्षि पतंजलिका कथन है।

मन-बुद्धिको प्रारम्भसे ही तद्रूप अर्थात् परमात्मरूप बना दो। '**तत्**' शब्दका लक्ष्यार्थ सच्चिदानन्दघन परमात्मा है, मन, बुद्धि, इन्द्रियोंको तद्रूप ही बना देना चाहिये। महर्षि पतंजलि कहते हैं—

'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'

सबका निरोध होनेपर द्रष्टाकी स्थिति ब्रह्ममें हो जाती है। इन्द्रियोंमें प्रधान वाणी है, वाणी, आकाश और शब्द एक है। वाणीसे ऐसे शब्दोंका उच्चारण करे, जो परमात्माके नाम हों। वाणी जब उच्चारण करते-करते थक जाय तो मनसे उसका मनन करे। मन जब मनन करते-करते थक जाता है तो वह तद्रूप हो जाता है। पूर्णानन्द आदि विशेषण विशेष्य वस्तुके हैं। विशेष्य वस्तु ब्रह्म है। आनन्दमय-सात्त्विक आनन्दसे विलक्षण है। ज्ञानस्वरूप आनन्द है। आनन्द परिपूर्ण है, पूर्णानन्द है।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

(बृ० उ० ५।१।१)

वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म पुरुषोत्तम सब प्रकारसे सदा-सर्वदा परिपूर्ण है। यह जगत् भी उस परब्रह्मसे पूर्ण ही है; क्योंकि यह पूर्ण उस पूर्ण पुरुषोत्तमसे ही उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार परब्रह्मकी पूर्णतासे जगत् पूर्ण है इसलिये भी वह परिपूर्ण है। उस पूर्ण ब्रह्ममेंसे पूर्णको निकाल लेनेपर भी वह पूर्ण ही बच रहता है।

वह ब्रह्म ही संसारके रूपमें प्रतीत हो रहा है। जैसे रात्रिमें स्वप्न वास्तवमें है नहीं, यदि मानो तो अपना स्वरूप ही है। वैसे ही संसार ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ है तो ब्रह्मका स्वरूप है। ऐसे चिन्मय परमात्माके सिवाय सबका बाध कर दे। वह आनन्द पूर्ण है, घन है। ब्रह्म सूक्ष्म-से-सूक्ष्म है उसमें आत्मघनता है, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि सबमें पोल है, आत्मामें पोल नहीं। इन्द्रियोंमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध विषय प्रवेश कर जाते हैं। मनमें संकल्प प्रवेश करते हैं, बुद्धिमें ज्ञान प्रवेश करता है, पर आत्मामें कोई प्रवेश नहीं कर सकता। आत्माकी घनता अलौकिक है, उसमें वही वह है। आनन्दघन, प्रचुरघन है, खूब गहरा है, उसकी सीमा नहीं, अपार आनन्द है, शान्तिमय है। शान्ति उससे कोई भिन्न वस्तु नहीं। वह अचल नित्य आनन्द है। उसका अभाव नहीं, भावरूप वस्तु है। इसलिये उसको 'ध्रुव' कहा। सदा एक-सा है, उसे बोधस्वरूप कहते हैं, वह सबसे उत्कृष्ट है, अतएव परम आनन्द कहा। मनका विषय नहीं, अतएव अचिन्त्य आनन्द कहा। उसका अन्त नहीं होता, अतएव अत्यन्त आनन्द कहा। इस प्रकार विशेषणोंसे युक्त उस विशेष्य आनन्दका उच्चारण करे। इस तरह बार-बार वाणीसे उच्चारण करते-करते मौन हो जाय।

फिर मनसे मनन करे। ऐसा करते-करते मन थक जाय तो मन तद्रूप हो जाता है। वह परमात्मा ही बन जाता है। मनकी सत्ता समाप्त हो गयी फिर बुद्धिका नम्बर आया। मन विशेषणोंका मनन करता था उससे बुद्धिमें एक विशेष्य वस्तुका अनुभव हो गया। उसका बुद्धिमें जो लक्ष्य है, वह लक्ष्य ध्येय है, वहाँ बुद्धि है और ध्याता साधक है। ध्येय बुद्धिग्राह्य है, बुद्धिके निश्चयमें परमात्मा है। बुद्धि ज्ञेयाकारको प्राप्त हो जाती है तो ब्रह्म वस्तु ही रह गयी। ध्याता ध्येय पदार्थमें विलीन-सा हो जाता है, फिर अर्थमात्र एक वस्तु रह जाती है। बुद्धि ब्रह्ममें मिल गयी तो ब्रह्मके स्वरूपमें बुद्धि मिली हुई है, उस समय ज्ञाता पुरुष छिपा हुआ है। ध्येय ब्रह्मका स्वरूप है, बुद्धिसे मिला हुआ है, उसमें स्थिति है, उसका नाम सविकल्प समाधि है। यहाँ तीन चीजें रहती हैं—शब्द, अर्थ और ज्ञान। तीनों ही ब्रह्मविषयक हैं। ब्रह्मका नाम, रूप और ज्ञान तीनों ब्रह्मसे भिन्न नहीं। ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयकी या ध्याता, ध्यान, ध्येयकी त्रिपुटी हट गयी। ध्येय ब्रह्म है, यहाँ नाम-रूपका ज्ञान है, यह है, ऐसा विकल्प है। यह विकल्प मिट जाय तो अर्थमात्र वस्तु रह जायगी। विकल्प था तो अन्तःकरण था, उसमें छिपा हुआ धर्मी था। मन, बुद्धि उसमें विलीन हुई तो साधककी स्थिति परमात्मामें हुई, छिपा हुआ स्वरूप रहा। उसमें विकल्प रहा, बादमें तन्निष्ठासे तत्परायणता हुई। वह भी ब्रह्ममें शामिल हो गया। यह निर्विकल्प समाधि है। समाधि अवस्था है, उसका फल है ब्रह्मकी प्राप्ति, वह अपुनरावृत्तिको प्राप्त हो जाता है। उस पुरुषके सब पाप ज्ञानके द्वारा धुल गये। पाप यानी मल-विक्षेप आवरण—ये धुल गये। ज्ञानसे जिसकी आत्मा शुद्ध हो गयी, वह फिर वापस नहीं आता। ब्रह्म प्राप्तकी प्राप्ति है। अज्ञान भूल मिट गयी। इस प्रकार

समझकर परमात्माका ध्यान करना चाहिये। इस प्रकार ध्यान हो जाय तो वह भावरूप परमात्मा ही रह जाता है। वहाँपर ब्रह्मके सिवाय और कोई नहीं—यह अजातवाद है। अज्ञान अनादि और सान्त है। यह सान्त हो गया, बस परमात्मा नित्य है, वह कायम रह गया। नित्य वस्तु है, वह भावरूप है। इसीसे सत् नित्य कहते हैं। वह आनन्दस्वरूप ब्रह्म अपने-आपको जानता है। ज्ञानस्वरूप परमात्माका स्वरूप है, इसका बुद्धिके द्वारा निश्चय रहा, उसकी ताजगी रहे। बुद्धिका निश्चय रहनेपर मनका अभाव हो जाता है। मनका अभाव, मनका निरोध हो जाय तो बुद्धिमें परमात्माका निश्चय अटल हो जाय, वह अटल निश्चय ध्यान है। अटल निश्चयमें निश्चल हो जाय तो यह समाधि है। समाधिमें ध्येय ज्ञेयवस्तु रह जाय तो वह सविकल्प समाधि है। ध्यान करनेवाला अपने-आपको भूल जाता है तो असली आनन्द प्रकट हो जाता है। जो छिपा हुआ है उसका अनुभव हो जाता है। अपने-आपको भुलाकर वह कायम रह जाता है। वह ज्ञान ही आनन्द है। ज्ञानका ज्ञान परमात्माको है। ज्ञानकी अटलता क्षय होनेवाली वस्तु नहीं; वह नित्य वस्तु भावरूप है। आनन्दमय वस्तुसे आनन्द ही है या आनन्द ही एकमात्र वस्तु है और किसीका भाव नहीं।

❑❑

वास्तविक सिद्धान्त

निन्दा प्राप्त हो उसमें आनन्द माने, किन्तु हमें ऐसा निमित्त भी नहीं बनना चाहिये जिससे निन्दा प्राप्त हो। अपने द्वारा जो कुछ हो रहा है वह भगवान् ही करवा रहे हैं, ऐसा हो जाय तो बड़ा अच्छा है।

प्रश्न—इसकी पहचान क्या है?

उत्तर—दुर्योधनका सिद्धान्त था—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
केनापि देवेन हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि॥

मैं धर्म जानता हूँ किन्तु मेरी उसमें प्रवृत्ति नहीं होती, मैं अधर्म जानता हूँ किन्तु मेरी उससे निवृत्ति नहीं होती। हृदयमें स्थित किसी देवताद्वारा जैसी प्रेरणा होती है, मैं वैसा ही करता हूँ।

यह भगवान्का सिद्धान्त नहीं है। गीता कहती है—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥ (गीता ३।३७)

रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है, यह बहुत खानेवाला अर्थात् भोगोंसे कभी न अघानेवाला और बड़ा पापी है, इसको ही तू इस विषयमें वैरी जान।

'काम' अधर्मसे छूटने नहीं देता और धर्ममें लगाता नहीं। जब हम भगवान्की कठपुतली बन जायँगे तो हम भगवान्की आज्ञाके अनुसार, संकेतके अनुसार चलने लगेंगे। जब भगवान्की इच्छाके अनुसार कार्य नहीं हो तो हमारी बागडोर कामके हाथ है।

जो भगवान्का प्रेमी होता है, वह किसीके द्वारा उद्वेगको प्राप्त नहीं होता और न वह किसीको उद्वेग देनेवाला होता है। यदि किसी कारणवश भूलसे हो गया तो वह उद्वेग ठहरेगा नहीं, आगे जाकर उसका भाव बदल जायगा।

❑❑

प्रवचन—दिनांक २६।३।१९४७, सायंकाल ६.१५ बजे, गंगाकिनारे, स्वर्गाश्रम।

सगुण-साकार भगवान्‌का ध्यान

आज सगुण भगवान्‌के ध्यान और पूजाके विषयमें कहा जायगा। ध्यानके पूर्व आसनसे बैठना चाहिये। नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाकर या आँखें बन्द करके ध्यान कर सकते हैं। निद्रा नहीं आये तो आँखें बन्द कर सकते हैं। ध्यान ऐसा करे कि अपने-आपका भी ज्ञान न रहे, भगवान्‌का ही ज्ञान रहे। भगवान् विष्णुका ध्यान बताया जाता है।

सृष्टिके आदिमें साक्षात् परमेश्वरने विष्णुके रूपमें प्रकट होकर लीला की, वे ही त्रेतामें भगवान् रामके रूपमें, द्वापरमें श्रीकृष्णके रूपमें प्रकट हुए। वास्तवमें विष्णु, राम और कृष्ण एक ही हैं। तीन चीजें साक्षात् मुक्ति देनेवाली हैं—भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान, भगवान्‌की आज्ञाका पालन (उपदेशका पालन) और भगवान्‌के आचरणोंका अनुकरण—ये तीनों एक हैं। तीनोंको आदर देना है तो भगवान् कृष्णकी गीताका उपदेश, भगवान् रामके चरित्रका अनुकरण और भगवान् विष्णुका ध्यान कर लें, तीनोंमें समानता रह गयी। प्रत्येकमें एक-एककी प्रधानता है। ध्यान भगवान् विष्णुका इसलिये क्योंकि उनका स्वरूप मनुष्यके शरीरसे विलक्षण है। ध्यानके पूर्व उनका आवाहन करना चाहिये। पवित्र, एकान्त स्थान जहाँपर स्वाभाविक उपरति और वैराग्य हो वह स्थान ध्यानके लिये उत्तम है। गीतामें कहा है—

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते। (गीता ६। ३५)

मनको अभ्यास और वैराग्यद्वारा परमात्माके ध्यानमें लगानेकी बात है।

प्रवचन—दिनांक २७। ३। १९४७, प्रात:काल ७.३० बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥ (गीता ६। २६)

यह स्थिर न रहनेवाला और चंचल मन जिस-जिस शब्दादि विषयके निमित्तसे संसारमें विचरता है, उस-उस विषयसे रोककर यानी हटाकर इसे बार-बार परमात्मामें ही निरुद्ध करे।

यहाँ स्वाभाविक वैराग्य होता है। चारों तरफ वैराग्यका साम्राज्य छाया हुआ है। पहाड़ोंका गढ़-सा है। वनका दृश्य वैराग्यको उत्पन्न करनेवाला है। गंगाका तट, गिरि-गुहा इनके दर्शनसे वैराग्य होता है। वैराग्यसे चित्तकी वृत्तियाँ संसारसे हट जाती हैं। परमात्मामें मन लगाना यह अभ्यास है। सत्संग, उपरति, वैराग्य, एकान्तस्थान परमात्माके ध्यानमें सहायक हैं। भगवान् कहते हैं—'**समं कायशिरोग्रीवम्**' होकर बैठना चाहिये।

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः॥ (गीता ६। १४)

ब्रह्मचारीके व्रतमें स्थित, भयरहित तथा भलीभाँति शान्त अन्तःकरणवाला सावधान योगी मनको रोककर मुझमें चित्तवाला और मेरे परायण होकर स्थित होवे।

चित्तमें स्फुरणारहित, संकल्परहित होकर बैठना चाहिये। जहाँ चंचलता है, वहाँ शान्ति नहीं। निर्भय होकर बैठना चाहिये। मृत्युसे बढ़कर कोई भय नहीं। यहाँपर मृत्यु हो जाय तो भी कोई बात नहीं। भगवान्‌ने बताया है—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥ (गीता ८। ५)

जो पुरुष अन्तकालमें भी मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीरको त्याग कर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूपको प्राप्त होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

भगवान्‌से प्रार्थना करे कि आपका ध्यान करते-करते ही मेरी मृत्यु हो। **'ब्रह्मचारिव्रते स्थितः'** ब्रह्म अर्थात् परमात्माका मनन करना, भगवान्‌की लीला, तत्त्व, रहस्य, महिमा, प्रेम, प्रभाव, श्रद्धाके विषयकी बातमें मनको लगाना, यह ब्रह्मके स्वरूपमें विचरण करना है। **'मनः संयम्य'** मनको अच्छी प्रकार अपने वशमें करके अधीन करना और परमात्माके सिवाय मन किसी औरका चिन्तन नहीं करे। **'मच्चित्तः'** से मनको परमात्मामें लगा दिया और **'युक्त'** से जुड़ा रहे, मनको वहाँ लगानेके बाद वहीं जोड़ दे। **'मत्परः आसीत'** मेरे परायण होकर बैठ जाय। इस प्रकार सगुण-साकार भगवान्‌के ध्यानके विषयमें भगवान्‌ने **प्रशान्तात्मा, विगतभीः, ब्रह्मचारिव्रते स्थितः, मनः संयम्य, मच्चित्तः, युक्त आसीत मत्परः**—ऐसे ये छः बातें बतलायी हैं।

प्रथम भगवान्‌का आवाहन करे। हे नाथ! हे गोविन्द! हे वासुदेव! हे नारायण! इस प्रकार प्रार्थना करे। एक बार नामका उच्चारण करना उनको बुलाना है, खूब प्रेमसे पुकार लगाये। आवाहन करनेसे यह समझे कि निराकार-रूपसे भगवान् सब जगह व्यापक हैं ही, वे प्रकाशके रूपमें परिपूर्ण हो रहे हैं। प्रकाशका पुंज हो जाता है, वह सगुण-साकार भगवान्‌का रूप है। भगवान्‌के तीन रूप हैं—निर्गुण-निराकार, सगुण-निराकार और सगुण-साकार। दिव्य तेजोमय स्वरूप है। देव-आकृतिवाला स्वरूप है। जैसे जल, बूँदें और बर्फ सब एक हैं, वैसे ही ये तीनों रूप एक हैं। आनन्दमय! कैसा आनन्द परिपूर्ण हो रहा है। विज्ञानानन्द परमात्मा परिपूर्ण हैं वे ही साकारके रूपमें प्रकट होते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं—

हरि ब्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम तें प्रकट होहिं मैं जाना॥

हमलोगोंमें जैसा प्रेम होना चाहिये वैसा प्रेम नहीं है, अतएव

भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये कि श्रद्धा-प्रेमकी तरफ आप नहीं देखते, हमपर कृपा करनी चाहिये। कैसा स्वाभाविक आनन्द छाया हुआ है। संसार है ही नहीं, आलस्य स्फुरणा है ही नहीं, शान्तिकी सीमा नहीं है। आनन्दकी बाहुल्यता है, यह निर्गुण-निराकार परमात्माका स्वरूप है, यही शान्ति, प्रसन्नता, आनन्द, प्रकाशके रूपमें प्रकट होता है। गंगासे आयी हुई गन्ध पवित्र है। गंगाका जल परमात्माके चरणोंका जल है। मधुर-मधुर गन्ध आती है वह भगवान्‌के चरणोंका स्पर्श करके आयी हुई है। भगवान्‌के दर्शन, स्पर्श, भाषण, चिन्तन सब मीठे और मधुर हैं। मनको आकर्षण करनेवाले हैं। इनसे अपने-आप भगवान्‌में मन लगता है। भगवान् प्रकट होते हैं तो प्रकट होनेके पूर्व ही सब जगह प्रकाश छा जाता है। शान्ति, समता, शीतलताको लेते हुए प्रकाश आता है। चन्द्रमासे बढ़कर शान्तिमय, सुहावना, अनुकूल, प्रिय, मधुर प्रकाश आ जाता है। नेत्रोंको बन्द करके देखो, कैसा प्रकाश है, मानो भगवान् प्रकट होनेवाले हैं। यहाँ शान्ति और प्रसन्नता है जिनसे हृदय प्रफुल्लित हो जाता है। भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये। प्रभो! प्रभो! आप प्रकट क्यों नहीं होते? आपके समान तो केवल एक आप ही हैं। प्रभो! प्रभो! हे हरि! हे वासुदेव! हे नारायण! इस तरह पुकार लगाये। भगवान् सगुण-निराकार और निर्गुण-निराकार रूपसे सदा विराजमान हैं और यह प्रकाश दिव्यरूप प्रकट होता है। आपका नियम है कि जो आपको चाहता है उसको आप चाहते हैं। आपका साक्षात् प्रकट होना तो आपके हाथकी बात है, पर आपका ध्यान करना हमारे हाथकी बात है। सुतीक्ष्ण आपके ध्यानमें मस्त थे, उनके ध्यानकी मूर्तिको आकर्षित करके आपने उनको प्रत्यक्ष दर्शन दिया। ध्रुवने आपका ध्यान किया तो उनकी

ध्यानकी मूर्तिको हटाकर आपने प्रत्यक्ष दर्शन दिये। हे भगवन्! आप इतना मिजाज क्यों करते हैं?

नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना॥

भगवान् आकाशमें आकर प्रकट हो गये हैं। महान् प्रकाशका पुंज ही आकृतिके रूपमें प्रकट हो गया है। भगवान् विष्णुका स्वरूप कैसा है—

सशङ्खचक्रं सकिरीटकुण्डलं सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम्।
सहारवक्षःस्थलकौस्तुभश्रियं नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम्॥

भगवान् शंख और चक्र (तथा गदा-पद्म) धारण किये हुए हैं, उनके मस्तकपर सुन्दर किरीट-मुकुट और कानोंमें कुण्डल हैं, वे पीताम्बर पहने हुए हैं, नेत्र कमलदलके सदृश कोमल, विशाल और खिले हुए हैं, वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणि, रत्नोंका चन्द्रहार और श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित है; ऐसे चतुर्भुज भगवान् विष्णुको मैं मस्तकसे नमस्कार करता हूँ।'

❑❑

भगवान्के स्वरूपका वर्णन और पूजनविधि गीताप्रेससे प्रकाशित श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश नामक पुस्तकमें है।

महात्मा और भगवान्की विशेषता

महात्माको जान जाय तो महात्मा बन जाय। महात्मा भगवान्की कृपासे मिलते हैं। महात्माकी जितनी महिमा कहें उतनी थोड़ी है। संसारमें महात्मा बहुत कम हैं। हैं तो मिलना मुश्किल है, भेंट हो जाय तो पहचानना मुश्किल है। महात्माके लक्षण यह समझना चाहिये कि जिनके दर्शन, स्पर्श, स्मरण, वार्तालापसे ईश्वरकी स्मृति, सद्‌गुण सदाचारकी वृद्धि हो, वही अपने लिये महात्मा हैं। जैसे राज्यके चपरासीको देखनेसे गवर्नमेण्टकी याद आ जाती है। महात्मा ईश्वरके चपरासी हैं, वे ज्ञानके भंडार हैं, उनके दर्शनसे अन्तःकरणमें ज्ञानकी बाहुल्यता होनी चाहिये। ज्ञानकी लालटेन हैं, अतएव उनसे अज्ञानजनित दोष दूर हो जाते हैं। जितनी जानकारी, श्रद्धा, विश्वास हो, उतना तो दोष दूर होना चाहिये। उनके वाणी, नेत्र, मनके परमाणु सब जगह व्यापक हो जायँ तो स्वाभाविक ही लाभ होना चाहिये।

नेत्र ज्योति है, वाणी ज्योति है। नेत्रकी वृत्ति दूरतक जाती है। वाणीसे शब्द जितनी दूरतक जाये, वहाँतक शब्दप्रकाश व्यापक हो जाता है। शब्दोंमें सभ्यता, ओज है और अज्ञानका नाश करनेवाली शक्ति है। शब्द कानोंमें पड़ें तो अज्ञानका नाश हो जाय। चेतावनी देते हैं। उनके संगसे झूठ, चोरी, व्यभिचार ये दुर्गुण दूर हो जाते हैं। महात्माके दर्शनसे नेत्र पवित्र हो जाते हैं। उनकी वाणी भीतर जाये तो अन्तःकरण पवित्र हो जाता है। उनका दर्शन भीतर जाये तो हृदय पवित्र हो जाता है। मनमें उनकी स्मृति हो तो मन पवित्र हो जाता है। महात्माके संगसे

प्रवचन—दिनांक २७। ३। १९४७, सायंकाल ६.१५ बजे, गंगाकिनारे, स्वर्गाश्रम।

अपने दोष भाग जाते हैं। शास्त्रकी मर्यादा है कि अपनेमें कोई दोष घट जाय तो उस दोषका प्रचार कर दे तो प्रायश्चित्त हो जाता है, दोष कम हो जाते हैं। ईश्वर और महात्माके सामने अपने अपराधका प्रचार करे तो प्रायश्चित्त हो जाता है। भगवान्के आगे झूठी सफाई न दे, भगवान्के आगे साफ कह दे कि अपराध तो हो गया, वह माफ हो जाय। महात्मा परमात्माको प्राप्त किये हुए पुरुष होते हैं, अतएव ईश्वरके आगे कहना और उनके आगे कहना समान ही है। अपराध करके छिपाये तो दण्ड मिलता है। जनता भी ईश्वर है, लोकसमूहके सामने भी अपने दोषोंको प्रकट कर दे तो दोषका भागी नहीं रहता। गवर्नमेन्टके राज्यमें अपराधको प्रकट करके अपराधकी क्षमा माँग ले तो माफी है। आगे अपराध नहीं करनेकी प्रतिज्ञा कर ले तो माफ है। ईश्वरके सामने भी पाप प्रकट कर दे, फिर अपनी इच्छासे पाप नहीं करे, परन्तु हो जाय तो क्षमा माँग ले, वह माफ है। जान-बूझकर पाप करे उसके लिये क्षमा नहीं है।

कोई आदमी शाप, वरदान या आशीर्वाद दे, यदि वह तपस्वी हो तो तप घटता है। साधक आश्वासन दे तो भी लाभ है। आश्वासन यह कि कोई बात नहीं, ऐसे संतोष कराया जाता है। साधक सोना है, सिद्ध पारस है। सोना खर्च करनेसे खर्च होता है, महात्मा पारस है, वह खर्च नहीं होता। भगवान् भी पारस हैं। विश्वामित्र दुष्टोंके नाशके लिये भगवान् रामको माँगनेके लिये गये। द्रौपदीने भीष्मसे पूछा—मैं हारी गयी या नहीं, भीष्म मौन हैं, कहते हैं युधिष्ठिरसे पूछो। युधिष्ठिर भी मौन हैं। पतिव्रता अपने पातिव्रत धर्मसे आत्मरक्षा कर सकती है। मानुषी शक्तिसे काम चल सके तो दैवी शक्ति खर्च नहीं करनी चाहिये। द्रौपदीने क्रोध नहीं किया, अत्याचार हुआ उसको सहन

किया। भगवान्‌को आतुर होकर हे नाथ! हे नाथ! पुकारा। शाप नहीं दिया। आपत्तिकालमें ईश्वरसे प्रार्थना करे तो वे सहायता भी देते हैं और भक्तिका भी नाश नहीं होता। भक्तकी भक्तिकी वृद्धि ही होगी, नाश नहीं। देवताओंसे प्रार्थना करे तो पूँजीका नाश होता है, पर भगवान्‌से सकाम प्रार्थना करे तो भक्तिका नाश नहीं होते हुए कामनाकी पूर्ति होती है। भगवान् योग-क्षेमको निबाहते हुए कामनाकी पूर्ति कर देते हैं। ध्रुवजीको राज्य दिया और अपनी भक्ति भी। ईश्वर और महात्माके साथ सम्बन्ध होनेसे नुकसान नहीं होता, क्योंकि वे ज्ञानी हैं, अज्ञानीसे नुकसानकी संभावना है, अन्धा दूसरेको रास्ता क्या दिखाये? भगवान् और महात्मासे भेंट हो जाय तो लाभ-ही-लाभ है, नुकसान नहीं। भगवान् वरदान देंगे तो श्रद्धा बढ़ेगी। श्रद्धा कायम रखते हुए वरदान देंगे। यह एक विशेष बात है। अच्छे पुरुषोंसे कोई चीज माँग ली, उनको बदलेमें कोई चीज देना चाहें तो वे टालमटोल करेंगे। प्रह्लादने कहा था—आपकी भक्ति करके कोई चीज माँगू तो वह वणिक्‌बुद्धि है। इसपर भगवान्‌को कोई जवाब नहीं मिला। अपने तो माँगना ही नहीं। उपकार या भक्ति करके बदलेमें क्या लेवें? भक्ति और ज्ञान अपने-अपने स्थानपर पूरा बल रखते हैं।

'ज्ञानहिं भक्तिहिं नहिं कछु भेदा'

एक ज्ञानी हो तो बहुत-से ज्ञानी बन जाते हैं। जैसे एक दीपक हो उससे अनेक दीपक जल सकते हैं। बत्ती और तेल होना चाहिये। श्रद्धा बत्ती है एवं प्रेम (सनेह) तेल है—इन दोनोंकी आवश्यकता है। चाहे दीपक न हो, बत्ती हो तो प्रकाश हो जायगा। श्रद्धा-प्रेम होना चाहिये। हर एक आदमीको यह ध्येय बना लेना चाहिये कि परमात्माकी प्राप्ति होनी चाहिये। शुद्ध

भाव बहुत जल्दी काम करता है। स्वार्थको लेकर साधन करे तो ज्यादा समयमें काम बने। स्वार्थ परमार्थमें लांछन लगानेवाला है। प्रेममें स्वार्थ आया तो प्रेम नहीं, वह कलंक है। आदमीको चाहिये कि ईश्वरके साथ या अपने आपसमें स्वार्थका सम्बन्ध हो तो स्वार्थको निकाल देना चाहिये। आत्माके कल्याणका स्वार्थ बड़ा अच्छा है। दूधमें जितना पानी होगा, उतना समय पानी जलनेमें लगेगा। अतएव स्वार्थ आसक्तिकी मात्राकी अधिकता होनेसे त्यागमें समय अधिक लगेगा।

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः॥ (गीता ४। २०)

जो पुरुष समस्त कर्मोंमें और उनके फलमें आसक्तिका सर्वथा त्याग करके संसारके आश्रयसे रहित हो गया है और परमात्मामें नित्यतृप्त है, वह कर्मोंमें भलीभाँति बर्तता हुआ भी वास्तवमें कुछ भी नहीं करता।

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते॥ (गीता ६। ४)

जिस कालमें न तो इन्द्रियोंके भोगोंमें और न कर्मोंमें ही आसक्त होता है, उस कालमें सर्वसंकल्पोंका त्यागी पुरुष योगारूढ कहा जाता है।

संसारके पदार्थोंमें आसक्ति है, वह कलंक है। आसक्तिके पेटमें सब दोष हैं, अतएव संसार, शरीर और भोगोंमें आसक्ति हटानी चाहिये। विषयासक्ति, संशय, अज्ञान, अश्रद्धा—ये चार बड़े दोष हैं। पतन करनेवाले हैं।

❑❑

ज्ञातृत्वरहित चेतन

प्रश्न—ज्ञातृत्वरहित चेतनके स्वरूपका विशेष विवेचन करें।

उत्तर—ज्ञेयकी अपेक्षा ज्ञानमें ज्यादा चेतनता है। ज्ञानसे ज्ञातामें ज्यादा चेतनता है, जैसे सच्चिदानन्द परमात्मा सब जगह परिपूर्ण हैं। तेजस् वस्तु सब जगह समानभावसे है, जैसे सूर्यका, अग्निका प्रकाश। रूपमात्र अग्निका ही स्वरूप है। रूपकी अपेक्षा विशेष प्राकट्य तारे, सूर्य, अग्निमें है, इनमें सूर्यमें विशेष है। सूर्यमें तारोंकी अपेक्षा गर्मी विशेष है, तारोंमें चमक ही है। रूपवाले पदार्थोंमें सबमें चमक नहीं है, रूप अग्निका ही अंश है। दियासलाईमें अग्नि व्यापक है, उसमें प्रकाशिका और विदाहिका शक्ति मौजूद है, पर अप्रकट है। जिसमें थोड़ा भी ज्ञान होगा, वह कहेगा कि इसमें अग्नि है, अप्रकट है। परमात्मा सब जगह समानभावसे रहते हुए किसी जगह समानभावसे और कहीं विस्तृतरूपसे हैं। वह चेतन समानभावसे सब जगह है, सत्तामात्रसे परमात्मा सब जगह है। जड़पदार्थोंमें सत्ता है, चेतनता और आनन्द अप्रकट है। जंगम प्राणियोंमें सत्ता, चेतनता दोनों प्रकट हैं, आनन्द अप्रकट है और जहाँ अवतार और महात्मा हैं, वहाँ आनन्द भी प्रकट है। वहाँ रोना नहीं है। इसी तरह दृश्य पदार्थ, ज्ञेय पदार्थकी प्रतीति है, वह ज्योति है। आँखोंके प्रकाशसे ज्ञान-ज्योति विशेष बलवान् है। जिसके द्वारा पदार्थ जाना जाय वह ज्ञान है। जाननेमें आनेवाली चीज अल्प है। वह चीज ज्ञानसे छोटी है, जितना ज्ञेय है वह सब ज्ञानमें है, ज्ञानका लक्ष्य नहीं हो सकता, ज्ञेयका लक्ष्य किया जा सकता है, ज्ञान जाना नहीं

प्रवचन—दिनांक २८। ३। १९४७, सायंकाल ६.१५ बजे, गंगाकिनारे, स्वर्गाश्रम।

जाता। ज्ञेयकी अपेक्षा ज्ञान सूक्ष्म, श्रेष्ठ और बलवान् है, उसमें चेतनता विशेष है। ज्ञेयमें जो ज्योति है, उससे ज्ञानकी ज्योति विलक्षण है। इसी प्रकार ज्ञाताकी चेतनता, ज्ञानसे भी विलक्षण है। उसके आगे ज्ञानकी ज्योति भी जड़ है। ज्ञानकी शक्ति नहीं कि ज्ञाताको जान सके। ज्ञाताको जाननेवाला कोई नहीं। नेत्रोंके प्रकाशसे बुद्धिका प्रकाश विलक्षण है। बुद्धिके प्रकाशसे आत्माका प्रकाश विलक्षण है। ज्ञानका प्रकाश नेत्रोंके समझमें नहीं आता, नेत्रोंका प्रकाश तो बुद्धिके समझमें आ जाता है। दृश्यज्ञेयसे ज्ञान विलक्षण है। ज्ञान जाननेवाला नहीं, ज्ञाताकी अपेक्षा ज्ञान जड़ है। ज्ञाता बड़ा है, चेतन है। ज्ञातामें ज्ञान है, ज्ञेयमें ज्ञान नहीं है। ज्ञानके अंदर ज्ञाता नहीं है। ज्ञान बुद्धिकी वृत्ति है, ज्ञाताको जाननेकी उसकी शक्ति नहीं है। ज्ञान समझमें आता है, ज्ञाता सूक्ष्म, महान्, चेतन तथा विलक्षण है। ज्ञाता जीव है, ज्ञान निर्जीव जड़ पदार्थ है। ज्ञाताकी चेतनता विलक्षण है।

ज्ञातासे ब्रह्म अनन्त है। ज्ञाता एकदेशीय-सा प्रतीत होता है, ब्रह्म वैसा नहीं। ज्ञातामें ज्ञान और ज्ञेय उपाधि है, ज्ञान और ज्ञेयके अभावमें ज्ञातामें भेद नहीं रहता, यद्यपि ज्ञान और ज्ञेयके स्थानपर ज्ञाता ही है। पर ज्ञेयसे ज्ञाता पृथक्-सा प्रतीत होता है। विचारसे ज्ञेय और ज्ञान ज्ञाताके अन्दर ही है। ज्ञाता पुरुष तो ज्ञान तथा ज्ञेयके रूपमें प्रतीत होता है। ज्ञाता एकदेशीय नहीं, सर्वदेशीय है। जैसे स्वप्नमें ज्ञाता एकदेशीय प्रतीत होता है, पर विचार करके देखा जाय तो ज्ञेयमें भी वही ज्ञाता था। वह ज्ञाता अनेक शरीरोंमें है, सब ज्ञाताओंका केन्द्र परमात्मा है। भिन्न-भिन्न चेतन वास्तवमें अविभक्त है।

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्। (गीता १३।१६)

वह परमात्मा विभागरहित एक रूपसे आकाशके सदृश

परिपूर्ण होनेपर भी चराचर सम्पूर्ण भूतोंमें विभक्त-सा स्थित प्रतीत होता है।

ज्ञान और ज्ञेय कल्पना किये हुए हैं। आरोप किये हुए हैं, वास्तवमें तो ज्ञाता ही है। वेदान्तके सिद्धान्तसे यह ज्ञाता देख रहा है, तब ये पदार्थ हैं, नहीं देखे तो नहीं हैं। वास्तवमें ये कल्पनासे ही बिना हुई वस्तु भासित हो रही है। सच्ची वस्तु एकरूप, एकरस रहेगी। ऐसा तो परमात्मा ही है। मिथ्या वस्तुका सेवन करते हैं, तबतक नित्य वस्तु प्राप्त नहीं होती। मिथ्या वस्तु तो प्राप्त होगी नहीं। मरुभूमिके जलको देखकर अपने पासके लोटेके जलको भी फेंक दे तो कुछ भी नहीं मिलेगा। मिथ्याके लोभमें आकर सत्का त्याग कर दे तो उसे न तो मिथ्या ही मिलेगा और न सत् ही। सत् भाषण, सत् क्रिया और सद्भाव किसीका त्याग नहीं करना चाहिये। असत्का ही त्याग करना चाहिये। यावन्मात्र पदार्थोंको तुम अपनी ओरसे छोड़ दोगे तो सुखी हो जाओगे। मरनेके समय छोड़ना पड़ेगा, तब महान् दुःख होगा। अतएव अभी ही त्याग देना चाहिये। दूसरेकी वस्तुपर हमने अधिकार जमा रखा है, उसे वापस कर देना चाहिये। अन्यथा जब वह छीनेगा तब दुःख होगा। देह पंचभूतोंका है। धर्मराजके यहाँ न्याय करायेंगे तो वहाँपर भी यही न्याय होगा कि देह पंचभूतोंका है। दूसरेकी चीजपर अपना कब्जा छोड़ दे तो सुखी होगा। जीते हुए इस शरीरसे ममता छोड़ दे, वह जीवन्मुक्त हो जाता है। वही सदाके लिये सुखी बन जाता है।

सबका त्याग कर दे, त्याग करनेवाली वृत्तिका भी त्याग कर दे तो वह असली परमात्माका स्वरूप रह जाता है। सबके साथ सम्बन्धरहित होना अपने स्वरूपको पाना है।

❑❑

महात्माका अनुभव—"परमात्मा है"

ज्ञानी महात्माका अन्तःकरण शुद्ध है, उसमें धर्मी नहीं है। वह परमात्माके स्वरूपका वर्णन करता है, यह वर्णन वेद-शास्त्रोंका कथन है। परमात्माका स्वरूप उसके अन्तःकरणमें आया। वास्तवमें परमात्मा तो अन्तःकरणमें आता नहीं, फिर भी जैसे एक आइना है, उसमें चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब आया। चन्द्रमा कहीं है तभी तो उसका चित्र आया। महात्माके अनुभवसे परमात्माका जो रूप है, वह साक्षात् परमात्मा सच्चिदानन्द बिम्बरूपसे है। उससे प्रतिबिम्ब आया। बुद्धि आइना है। स्थिर, सूक्ष्म और निर्मल बुद्धि है। वह परमात्माको बतला रही है—'**बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्**' स्वरूप है। बुद्धिके द्वारा जो रूप बताया जाता है, वह परमात्माका रूप नहीं है। पर जिसके द्वारा बुद्धि निश्चय करती है, वह परमात्मा है। महात्माका अनुभव 'परमात्मा है' यह बता रहा है। दर्पणमें चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब यह साक्षी दे रहा है कि चन्द्रमा है। महात्माका अनुभव ही वेद-शास्त्रोंका भाव है। महात्माके अनुभवका आधार ब्रह्म है। ब्रह्मके अस्तित्वका आधार महात्माका अनुभव है। ज्ञान होनेके उत्तरकालमें ज्ञानीका अन्तःकरण और अन्तःकरणमें यह संसार जो साधारण आदमीको दीखता है, वैसा नहीं दीखता, दूसरी प्रकारसे दीखता है। स्वप्नवत् कहा जाय तो युक्तिसंगत नहीं, स्वप्नगत हो गया। वर्तमानमें क्रिया नहीं तो स्वप्नके समान नहीं घटता। आकाशमें तिरवरोंके समान कहा जाय तो तिरवरोंमें अत्यन्ताभावकी कल्पना है और प्रयत्न नहीं करना पड़ता। यहाँ प्रयत्न है। सिनेमाके खेलके समान कहा जाय तो खेल देखनेवाला पुरुष उस खेलमें शामिल नहीं है। वह तमाशा हर्ष-शोक देता है। महात्माको हर्ष-शोक नहीं होता। महात्माका काम लोकसंग्रहार्थ है लोकदिखाऊ नहीं। सांसारिक आदमी जैसा कर्म करता है, वैसा उसका कर्म नहीं, क्योंकि सांसारिक आदमीका कर्म बन्धनकारक बन जाता है। महात्माके कर्म इस प्रकार बताये गये हैं—

प्रवचन—दिनांक २९। ३। १९४७, प्रातःकाल ७.३० बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः॥ (गीता ४।१९)

जिसके सम्पूर्ण शास्त्रसम्मत कर्म बिना कामना और संकल्पके होते हैं तथा जिसके समस्त कर्म ज्ञानरूप अग्निके द्वारा भस्म हो गये हैं, उस महापुरुषको ज्ञानीजन भी पण्डित कहते हैं।

क्रियमाण कर्म लागू नहीं होते, प्रारब्धका यह विभाग शरीरका भोग बाकी है, उसमें उसको हर्ष-शोक नहीं होते। उसकी सब क्रिया मुक्ति देनेवाली है। लोग उसका जीवन चाहते हैं। उसका जीवन अलौकिक है। लोकमें होनेवाली क्रियाके साथ उसकी तुलना नहीं की जा सकती।

परमात्माके विषयकी बात जितनी समझमें आ गयी, वह कायम रहेगी। परमात्माके स्वरूपका जो अनुभव होगा, वह सबको एक होगा। तत्त्वज्ञान बुद्धिकी वृत्ति है, चेतन वस्तु नहीं, किन्तु चेतनको पकड़ाया जाता है, इसलिये तत्त्वज्ञानका आदर है। जैसे चन्द्रमाको बतानेके लिये कई उपाय हैं, उनमेंसे एकसे ही चन्द्रमाके दर्शन हो जाते हैं, अतएव सब सत्य हैं। जितने दूरतक परमात्माके तत्त्व-रहस्यको समझ गया, उतने दूरतक वह आगे चला गया। उतना रास्ता कट ही गया, वह वापस नहीं लौटेगा। गुण-विकार तो घट-बढ़ सकते हैं, किन्तु यथार्थ वस्तुको जितना प्राप्त कर लिया, वह नहीं घटेगा। परमात्माके स्वरूपके निर्णय, अनुभवको तत्त्व-रहस्य कहते हैं। वह उच्चकोटिकी चीज है। वह अनुभव केवल कायम ही नहीं रहेगा, अपितु काम-क्रोध आदि दोषोंको जलानेमें भी मदद करेगा। अध्यात्मविषयक ज्ञान केवल बुद्धिगत ही नहीं रहता, वह आत्मातक पहुँच जाता है। मरनेके समय बुद्धिका ज्ञान कम-ज्यादा हो सकता है, किन्तु वह चीज कम-ज्यादा नहीं हो सकती। उसके कितने ही जन्म हो जायँ, वह चीज तो साथ रहेगी।

❑❑

श्रद्धासे विशेष लाभ

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि॥ (गीता ४। ३६)

यदि तू अन्य सब पापियोंसे भी अधिक पाप करनेवाला है; तो भी तू ज्ञानरूप नौकाद्वारा निःसंदेह सम्पूर्ण पाप-समुद्रसे भलीभाँति तर जायगा।

सत्संगकी महिमा है जिससे तुरन्त ज्ञान हो जाता है। '**अपि चेत्**' शब्द सार्थक तब होते हैं, जब तू ऐसा नहीं है, यदि हो तो भी ज्ञानरूपी नौकाद्वारा तर जाता है। थोड़ा धर्मात्मा और ज्यादा धर्मात्माकी बात तो है ही। यदि शुद्ध होकर प्राप्ति हो जाय तो '**अपि चेत्**' की सार्थकता ही क्या है? '**क्षिप्रं भवति धर्मात्मा**' धर्मात्मा वह है जो केवल धार्मिक पुरुष हो। यही नहीं, उसको शाश्वती शान्तिकी प्राप्ति हो जाती है। एक नम्बर पापी हो, उसको भी जल्दी शान्ति मिल जाती है, फिर थोड़ा पापी या पुण्यात्मा हो, उसके उद्धारमें तो कहना ही क्या है। अन्तकालमें महापुरुषोंकी कृपासे और भगवान्‌के नामसे उद्धार हो जाता है। भाव बदल जानेपर देरीका काम नहीं। श्रद्धासे बात समझमें आ जाती है। उसका बहुत भारी विश्वास हो जाता है। श्रद्धेय पुरुष जो कहता है वह बात मान लेता है।

प्रश्न—एकदम बात बैठ जाय ऐसा कब हो? महात्मा वही, सुननेवाला वही और रोजाना सुनें?

उत्तर—भगवान्‌की, महात्माकी कृपासे बात एकदम बैठ जाती है। धुंधुकारी महान् पापी था, सुननेसे ही उसका उद्धार हो

प्रवचन—दिनांक ३१। ३। १९४७, सायंकाल ६.१५ बजे, गंगाकिनारे, स्वर्गाश्रम।

गया। उसमें श्रद्धा थी; श्रद्धासे, ईश्वरकी कृपासे उद्धार हो गया। दूसरे जो सुननेवाले थे उनका उद्धार नहीं हुआ।

भगवान्‌के गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य समझनेसे श्रद्धा होती है। युक्ति-अनुसार कहते हैं, फिर भी काम नहीं बनता तो यही कहा जाता है कि ईश्वरकी कृपासे होता है। भगवान्‌की सामान्य कृपा तो सबपर है ही, पर मान लेनेसे विशेष लाभ होता है। भगवान् बहुत दयालु हैं, वे हमारे दोषोंका नाश करके ही हमारा उद्धार करेंगे ऐसी बात नहीं है। आपकी धारणा हो कि दोषोंका नाश होनेपर ही कल्याण करेंगे तो भगवान् कहते हैं—ठीक है। हम देरका पुल बाँधेंगे तो देर होगी ही। सूर्यके उदय होनेपर अन्धकार तुरन्त नष्ट हो जाता है। हम बन्द कोठरीमें बैठ गये तो अन्धकार दूर नहीं होगा। फिर सूर्यका क्या दोष? वर्षा हो रही है, छाता लगा लिया तो वर्षाका क्या दोष? गंगाकी बड़ी भारी कृपा है, जैसे गंगाका प्रवाह है, वैसे ही भगवान् और महात्माकी कृपाका प्रवाह है। उसको न समझनेके कारण विलम्ब है। भगवान्‌की दयाका विशेषभाव समझ जाय तो तुरन्त काम बन जाय। दयाका बड़ा भारी प्रभाव है। कोई समय ऐसी बात हो जाय, जो आदमीमें चमक उठे। अच्छे आदमी यह कहते हैं कि शास्त्रोंमें लिखा है, गीतामें लिखा है, विश्वास करना चाहिये कि यह काम करनेसे भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। मैं कहता हूँ कि ये तो भगवान्‌के वचन हैं, सोलह आना सत्य हैं। अच्छा आदमी है, उसमें विश्वास हो जाय तो प्राप्ति हो जाय। दूसरे नंबरपर बात है कि जबतक प्राप्ति नहीं हो तबतक बेचैन हो जाय।

कोई कहे कि ये भगवान्‌के वचन हैं, तुम करो तो तुम्हें लाभ, मैं करूँ तो मेरे लाभ, इससे यह बात सिद्ध नहीं होती कि इसने लाभ उठा लिया तो बात यह है कि उसने तो कानून बताया। जिसे परमात्माकी प्राप्ति हो गयी, वह भी ऐसा कह सकता है और जिसे

नहीं हुई वह भी कानून तो बता सकता है। अतएव मनुष्यको चाहिये कि दोनोंकी जिसमें गुंजाइश हो वह बात कहनी चाहिये। जिसको प्राप्ति हो गयी, उसको बचावकी क्या आवश्यकता है? साधक तो बेसमझ हैं, सिद्ध बेसमझ नहीं। यह बात आती है कि अच्छे महापुरुषका यह प्रभाव है कि उनके दर्शन, स्पर्श, चिन्तनसे भी कल्याण हो जाता है, ऐसी महिमा कही जाती है तो उनके शब्दोंसे श्रद्धालुको प्राप्ति होनी चाहिये, यदि नहीं हो तो महात्मापर लांछन लग जाता है। यदि तुम्हें विश्वास हो तो कहनेकी आवश्यकता नहीं और कहे तो कहनेवालेकी बेसमझी है।

दूसरी बात है महात्माके दर्शन-स्पर्शसे पापीका भी उद्धार हो जाता है। उनके आशीर्वाद और वरदानसे कल्याण हो जाता है, यह बात तो सही है, पर ऐसे आदमी दुनियामें देखनेमें नहीं आते। अभाव तो है नहीं, फिर देखनेमें नहीं आते तो बात यह है कि यह तो श्रद्धालु पात्रके लिये है। यदि श्रद्धालु पात्र नहीं हो तो लाभ नहीं होता। शास्त्र सच्चा है, वह कहता है कि कोई महापुरुषकी चरणकी धूलि उठाये तो उसका उससे कल्याण हो जाता है, नहीं हो तो पात्रमें कमी है। अतएव साधक और सिद्ध दोनोंका कल्याण हो जाता है। अपनी चरणधूलि लेनेके लिये निषेध करना चाहिये। धूलि उठानेके विषयमें साधक तो निषेध कर सकता है, पर सिद्ध क्यों करे? बात यह है कि वह उठानेवाला पात्र नहीं। वह धूलि उठाये तो लाभ नहीं होगा, फलस्वरूप अश्रद्धा बढ़ेगी। दूसरे आदमी भी ऐसा करने लगेंगे। अपनेमें या उठानेवालेमें कमी हो तो दोनों प्रकारसे निषेध करना चाहिये। कोई उच्चकोटिका महापुरुष है, उसने वरदान या शाप दे दिया, उस मुताबिक काम नहीं हुआ तो वरदान और शापका महत्त्व घटेगा।

❑❑

अहंता-ममता कैसे मिटे ?

भक्तिमार्गमें प्रेम, ज्ञानमार्गमें समझ और कर्मयोगमें निष्कामभावकी प्रधानता है।

ज्ञान और ज्ञेय—ज्ञातासे अलग है ऐसा मान रखा है। ज्ञाता सब जगह है। स्वप्नमें जो संसार प्रतीत होता है, उसमें खुद एक बनता है और संसार भी रहता है—वहाँ अहं तथा इदं बुद्धि रहती है। जब आँख खुल जाती है, तब वास्तवमें या तो स्वप्नका संसार है नहीं, यदि है तो उसका स्वरूप ही है। वहाँ एकदेशमें अहंबुद्धि थी और इदंबुद्धि भी कल्पित है। यदि मानो तो अपनी एक आत्माके सिवाय और कुछ नहीं। वही बात वर्तमान समयमें है—एक देशमें अहंता और बाकीमें इदंता। अब प्रश्न यह है कि सबमें अहंता हो जाय तो सबके दुःखसे दुःखी होना चाहिये। स्वप्नमें भी यही बात थी, एक जगह अहंतामें दुःखका अनुभव होता था। संसारमें राग-द्वेष, सुख-दुःख होता है। राग-द्वेषका मूल अविद्या है, अविद्याके नाशसे सबका नाश हो जायगा। हर्ष-शोक, राग-द्वेष, अनुकूलता-प्रतिकूलता सबका नाश हो जायगा। शरीरमात्रमें अपने-आपको मानना अपनेको एक देशमें कैद करना है। अहंताके कारण ही सुख-दुःखका आघात पड़ता है। किसी भी प्रकारसे मनुष्य एकता कर दे तो दुःख मिट जाय। एकता कैसे? सारी दुनियामें इदंता हो रही है, उसका प्रलय हो जाय। मैं-मेरा है उतनी दूरतक दुःख है। जब मैं-मेरा नहीं तो रत्तीभर भी दुःख नहीं, पर बुद्धि (परायापन) है, उन सबका नाश हो जाय तो किंचित् भी दुःख नहीं है। उसी प्रकार जहाँपर मैं-मेरा है, वहाँ दुःख है तो इसे भी हटा दे। ममताका भाव हट जाय तो उसके साथ दुःख भी हट जायगा।

प्रश्न—फिर वे चीजें मेरी क्यों नहीं हैं?

प्रवचन—दिनांक १-४-१९४७, सायंकाल ६.३० बजे, गंगाकिनारे, स्वर्गाश्रम।

उत्तर—यह सोचे कि कपड़े मेरे हैं तो कपड़े तुम्हारे कहाँ? सूतके हैं। कपड़ेका नाश हो गया तो तुम्हारा क्या बिगड़ा? जितनी चीजें आज तुम्हारी हैं, वे कल तुम्हारी नहीं रहेंगी, फिर तुम्हारा क्या है? तुम्हारी और उन वस्तुओंकी जाति एक नहीं, भूलसे तुमने उनको अपना मान लिया, इसलिये दुःख है। मरनेपर भी वह चीज तुम्हारे साथ नहीं जाती—तो तुम्हारी वस्तु कहाँ है? देहमें अहंता है और देहसे अन्य वस्तुओंमें ममता है, किसी चीजको प्रमाणित नहीं कर सकते कि यह हमारी है। अधिक ममता बढ़ानेसे ज्यादा आफत ही खड़ी कर ली। जिसके बिलकुल संग्रह नहीं, वे भी जीवित हैं। ममता छोड़नेसे अभी जितना सत्कार हो रहा है, उससे अधिक सत्कार होगा। ममता जीनेमें सहायक नहीं, जितना ज्यादा दुःख बढ़ाना हो उतनी ज्यादा ममता बढ़ा लो। देहमें अहंता भी होती है और ममता भी। देह न तो तुम्हारा स्वरूप है और न देह ही तुम्हारा है। यदि देह तुम्हारा हो तो मरनेके बाद तुम्हारे साथ जाये। शरीर यदि अपना है तो इसे परलोकमें ले जानेसे रोकनेवाला कौन है? तुम्हारे शरीर और कुटियामें कोई अन्तर नहीं। आत्मा चेतन है, शरीर और कुटिया जड़ है। कुटिया आगसे जलती है और शरीर भी जलता है। आत्मा अविनाशी है, जलता नहीं। शरीर पंचभूतोंका बना हुआ है, वह तो पंचभूतोंकी चीज है। उसके लिये दुःख नहीं करना चाहिये। देह आत्मा नहीं हो सकता। देह आत्मा हो तो मरनेके बाद देह भी आत्माके साथ जायगा।

वास्तवमें विचार करके देखो तो हाथ, कान, नाक सब मेरे हैं, ऐसा कहते हो। ये आत्मा नहीं हैं। पंचभूतोंकी देह है, उसको पंचभूतोंके सुपुर्द कर दो तो तुम्हें दुःख नहीं होगा। सौंप करके चाहे इस शरीरमें रहो, तुम्हें दुःख नहीं होगा। अधिकार बिना जमाये बैठे रहो, ममता-अभिमानका त्याग कर दो, फिर रहो तो दुःख नहीं। जितनी ममता, अहंता अधिक होगी, उतनी मार अधिक पड़ेगी।

मुर्देकी भाँति बन जाय। जीते हुए मर जाय, उसमें बड़ी शान्ति और आनन्द है। मैं जयदयाल हूँ, यह अभ्यास कर रखा है। उलटा अभ्यास करे कि मैं जयदयाल नहीं हूँ। जयदयाल नाम न तो शरीरका है और न आत्माका ही है। नाम कल्पनामात्र है। यह अज्ञानसे है। भूलका दण्ड तो दुःख ही है। असली बात यह है कि नामके अन्दर अभिमान है, वह हटा दिया जाय। जैसे नाम झूठा है, वैसे ही रूप भी झूठा है। कल्पनामात्र है, जितना अभिमान है, उतनी फजीती (बेइज्जती) है। मैं जयदयाल हूँ, इस अभ्यासमें तो बहुत समय लगा और मैं जयदयाल नहीं हूँ, इस अभ्यासमें समय नहीं लगता। एक मकानको बनानेमें कितना समय लगता है, उसको नष्ट करनेमें समयका काम नहीं। दूसरी बात है अपना नाम बदलनेमें देरका काम नहीं। वास्तवमें सम्बन्ध माना हुआ है, उसको छोड़नेमें क्या आपत्ति है। समयका काम नहीं। बनाया हुआ सम्बन्ध तोड़नेमें समय नहीं लगता। भक्त हो चाहे ज्ञानी, ममता दोनोंके छोड़नेकी चीज है।

शरीर महान् गन्दा है। हाड़-मांस, रुधिर, मज्जा, मल-मूत्र इसमें भरे हैं। क्या यह शरीर अपनी आत्मा है? क्या यह अपना स्वरूप है? मूर्खता और अज्ञानके कारण यह अपना स्वरूप दीखता है, यह मोह है। विचार करना चाहिये कि ऐसी गन्दी चीज अपनी आत्मा कैसे हो सकती है। देह मैं हूँ और पवित्र हूँ, यह मानना मूर्खता है। देह बनकर नित्य नहीं है। भोजन करनेके पहले फल, दूध, अन्न सब पर होनेसे उनका बोझा लगता था, किन्तु जब उनको खा डाला तो वही बोझा नहीं मालूम देता, क्योंकि उनमें अहंबुद्धि कर ली। थोड़ी देर पहले वह अन्न आत्मा नहीं था, खा लेनेपर वही अन्न आत्मा बन गया। वास्तवमें अन्न आत्मा नहीं है। हाथ-पैर भी अपनी आत्मा नहीं हैं। विचार करके देखें—हाथ या पैरके कोई बीमारी हो जाय

तो डॉक्टर राय देता है कि वह अंग काट दिया जाय। वह कहता है—हाँ ठीक है। क्लोरोफार्म सुँघाकर हाथ काट दिया गया। जब वह होशमें आया तो उसी कटे हाथको अपनेसे पृथक् मानता है, उस हाथको काटो चाहे जलाओ या गाड़ो, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। जैसे वह कटा हुआ हाथ अपनेसे पृथक् है, वैसे ही यह दूसरा हाथ या पैर इनसे भी सम्बन्ध नहीं है। कटे हुए हाथमें आत्माकी प्रतीति नहीं होती है। इसलिये हाथ जब अंगमें था उस समय भी उसमें आत्मबुद्धि अज्ञानसे थी। क्योंकि—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। (गीता २।१६)

असत् वस्तुकी तो सत्ता नहीं है और सत्का अभाव नहीं है।

सारे शरीरसे अपनी आत्मबुद्धि हटा लेनी चाहिये, जैसे वह कटा हुआ हाथ अपनेसे पृथक् है, वैसे ही सारे शरीरको अपनेसे पृथक् समझे। जैसे एक हाथके कट जानेपर वह एक हाथवाला कहलाता है, वैसे ही राजा जनकका देहके साथ सम्बन्ध नहीं होनेके कारण वे विदेह कहलाये। महर्षि पतंजलि कहते हैं—**'छिन्नहस्तवत्'** मरनेके समय शरीरमेंसे कौन जाता है? स्थूल शरीरसे सूक्ष्म शरीर जाता है, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, प्राण जाते हैं। जो शरीरमेंसे निकलकर जाता है उसको अपना मान लिया? जीवात्माको अपनी आत्मा मान लिया, जीवात्मा भी अपनी आत्मा नहीं है। स्वप्नके संसारमें आप घूमते हैं—वह आपका मानसिक शरीर है, उसके द्वारा स्वप्नमें सुख-दुःख भोगे। आँख खुलनेके बाद वह स्वप्नके संसारको, स्वप्नको झूठा समझता है, क्योंकि वह रहता नहीं। स्वप्नके समय जाग्रत् संसार झूठा है और जाग्रत्के समय स्वप्नका संसार झूठा है, अतएव दोनों झूठे हैं।

गीताके टीकाकार आचार्य कोई ज्ञानमार्गको असली ठहराकर द्वैतको मिथ्या बताते हैं, वैसे ही द्वैतवादी अद्वैतको झूठा बताते हैं, अर्थात् कोई कहता है गीतामें केवल द्वैत है, दूसरा कहता है

केवल अद्वैत है। बात यह है कि सब झूठे हैं। फिर सत्य क्या है ? गीता सत्य है। बात यह है कि किसी एकको मानकर चलो तो उससे परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।

भगवान्‌का ध्यान करते हैं वह नकली स्वरूपका करते हैं। भगवान्‌के नामपर भगवान्‌के किसी रूपका ध्यान करते हैं तो उससे भगवान्‌के असली रूपकी प्राप्ति हो जाती है। पुस्तकोंमें पढ़नेपर और महात्माओंसे सुननेपर भगवान्‌के स्वरूपका जो लक्ष्य बँधता है, उसके अनुसार ध्यान करते हैं तो भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। भाव, श्रद्धा और विश्वास होना चाहिये। साधन सब झूठे हैं, लक्ष्य ठीक है, अतएव फल सच्चा होता है। इसीलिये सब साधन भी सच्चे हैं। सूक्ष्म-शरीर भी आप नहीं हैं। जैसे स्थूल-शरीर बदलता है, वैसे ही सूक्ष्म-शरीर भी बदलता है। अभी हम मनुष्य-शरीरमें हैं तो स्वप्नका शरीर भी अपना मनुष्यका ही होगा। स्थूल-शरीर यदि गदहेका होगा तो स्वप्नमें भी अपनेको गदहा ही देखोगे। आप यह कहते हैं कि मन, प्राण छटपटा रहे हैं, आँखोंसे दीखता नहीं तो नेत्रोंके नाशसे अपना नाश नहीं होता, आत्मामें कमी नहीं आती, अतएव प्राण, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि ये आत्मा नहीं हैं। ये अपनेसे अलग हैं। अपनेको इनका ज्ञान है, अतएव ये अपनेसे भिन्न हैं। आत्मा वह है जो मनको, इन्द्रियोंको, बुद्धिको जानता है, वह तुम्हारा स्वरूप है।

स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों शरीर भी तुम्हारे नहीं हैं। शरीर तीन हैं और आवरण पाँच हैं। पंचकोश और तीन शरीरोंमें आत्मा है। आत्मा इन सबसे अलग है और तीनों शरीर जड़ हैं। ज्ञान न रहा तो क्या रहा ? अज्ञान रहा, सुषुप्ति-अवस्थामें यह अज्ञान रहता है। इसके नाशसे आत्माकी प्राप्ति होती है। सूक्ष्म-शरीरके बाहरका परदा प्राण है। प्राण निकलना प्रमाण है कि वह पुरुष मर गया। मनुष्य मरता है तो उसमेंसे हवा निकलती है। हवाके ४९ दूत हैं,

ये उस जीवको कुत्तेकी योनिमें ले जाना हो तो कुत्तेके खाद्य पदार्थके द्वारा उसमें ले जाते हैं। प्राणोंमें इन्द्रियाँ और इन्द्रियोंमें मन और बुद्धि—ये सत्रह तत्त्व हैं, यह सूक्ष्म-शरीर है। इसके आगे अव्याकृत माया है। जिसे व्यष्टि प्रकृति कहते हैं, वह कारण-शरीर है।

१. अन्नमयकोश—जो स्थूल-शरीर है।

२. प्राणमयकोश—जो पाँच भेदोंवाला है—
प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान।

३. प्राणोंमें मनोमयकोश है—इसमें दस इन्द्रियाँ हैं और एक मन है।

४. विज्ञानमयकोश—बुद्धि है, ज्ञानेन्द्रियोंको लेकर बुद्धि है।

५. आनन्दमयकोश—सुषुप्तिमें सुख है। अतएव वह तीन शरीर कोठरियोंमें है। ये सब अनात्म वस्तु हैं, इनके नाशसे उसको परमात्माकी प्राप्ति है। इन तीनों शरीरोंसे अलग द्रष्टा, साक्षी होकर देखे। जो चीज अपनेसे पृथक् है उसके नाशसे अपना विनाश नहीं होता, अपनेसे जो अलग हैं उनके नाशसे कोई विकार नहीं होता। अतएव या तो सब शरीरोंमें अहंता कर ले, जैसे अपने एक शरीरमें अहंता है। इससे एक शरीरकी अहंता मिट जाती है या सब शरीरोंमें अहंता नहीं है तो इसमेंसे भी अहंता हटा दे।

प्रश्न—भक्तिके मार्गमें अहंता, ममता कैसे हटायें?

उत्तर—जिन चीजोंमें ममता है, स्त्री, पुत्र, धन आदिमें ममता है, अपनेसे पूछे कि क्या ये तेरे हैं? तो कहे कि नहीं ये सब तो परमात्माके हैं। राजा बलिसे भगवान् वामनरूपसे तीन पैर पृथ्वी माँगने गये। शुक्राचार्यकी बात न मानकर बलिने कहा कि जब भगवान् हैं और माँगने आये हैं तो दे देना चाहिये। सब ऐश्वर्य, राज्य, अपने-आपतकको दे दिया। उसने पहले ममताकी

चीजें दी, बादमें अपनी अहंताकी। इसी प्रकार जितने पदार्थ और क्रिया हैं सबको भगवान्‌के अर्पण कर दे। यह अच्छा रास्ता है। भगवान्‌ने गीतामें बतलाया है—

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव॥
मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।

(गीता १८। ५७-५८)

तुम्हारे द्वारा जितने कर्म होते हैं वे सब मनसे मेरे अर्पण कर दे। शरीर भी मेरे अर्पण कर दे। बुद्धिको, चित्तको मेरे अर्पण कर दे फिर तू मेरी कृपासे संसार-सागरसे पार चला जायगा। जैसे जहाजसे पार जाना हो तो अपना सामान और खुद अपने-आपको जहाजमें डाल दो, फिर कप्तान कहता है मैं तुमको पार ले जाऊँगा।

अपारसंसारसमुद्रमध्ये सम्मज्जतो मे शरणं किमस्ति।
गुरो कृपालो कृपया वदैतद्विश्वेशपादाम्बुजदीर्घनौका॥

हे दयामय गुरुदेव! कृपा करके यह बतलाइये कि अपार संसाररूपी समुद्रमें मुझ डूबते हुएका आश्रय क्या है? विश्वपति परमात्माके चरणकमलरूपी जहाज। विश्वके मालिक परमात्माके चरण ही यहाँ शरण लेनेयोग्य नौका हैं। गीता भी कहती है—

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥ (गीता १२। ७)

हे अर्जुन! उन मुझमें चित्त लगानेवाले प्रेमी भक्तोंका मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसार-समुद्रसे उद्धार करनेवाला होता हूँ।

चार बातें हैं—१. सब कर्म मेरे अर्पण कर दे २. अपने-आपको मेरे अर्पण कर दे ३. मनको मेरे अर्पण कर दे ४. बुद्धिको मेरे अर्पण कर दे। जिसने इन सबको भगवान्‌के समर्पण कर दिया, उसका बेड़ा पार करना भगवान्‌के जिम्मे है। भगवान् अर्जुनसे कहते हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ (गीता १८।६६)

तू मेरी शरणमें आ जा, मैं तुझे सब पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर, पापोंसे मुक्त करना, दुःखसे पार करना एक ही बात है। अपने द्वारा जितने कर्म होते हैं उनको स्वरूपसे भगवान्‌के समर्पण कर दे।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥

(गीता ९। २७-२८)

हे अर्जुन! तू जो कर्म करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो तप करता है, वह सब मेरे अर्पण कर। इस प्रकार, जिसके समस्त कर्म मुझ भगवान्‌के समर्पण होते हैं—ऐसे संन्यासयोगसे युक्त चित्तवाला तू शुभाशुभ फलरूप कर्मबन्धनसे मुक्त हो जायगा और उनसे मुक्त होकर मुझको ही प्राप्त होगा।

अर्पण दो प्रकारका होता है। स्वयं कर्ता बनकर कर्म करे और भगवान्‌के अर्पण करे—यह साधारण अर्पण है। दूसरा इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि सबको भगवान्‌के अर्पण करके भगवान् जैसे कर्म करवायें वैसे कर्म करे। परमात्मा बाजीगर हैं, उनको अपने शरीररूपी कठपुतलीको सुपुर्द कर दे। जैसा वे करायें वैसा करे। यहाँ क्रिया तथा शरीर दोनों भगवान्‌के अर्पण हैं।

बुद्धिको भगवान्‌के समर्पण कर दे। इसके दो प्रकार हैं—

बुद्धिसे हर वक्त परमात्माका निश्चय करे या भगवान् जो कुछ कर रहे हैं उसमें अपनी बुद्धिको नहीं लगाये। महात्माके पास गये उन्होंने कोई आज्ञा दी, उसमें बुद्धि नहीं लगानी चाहिये। किसी काममें नुक्स निकालना—यह बुद्धि लगाना है। जो कुछ होता है ठीक होता है, उसमें बुद्धि नहीं लगाये।

मनको समर्पण करना यह है कि हर वक्त भगवान्का स्मरण करे। अपने ममताकी जो कुछ चीज है उस सबको भगवान्की समझे। स्त्री, पुत्र, धन, मकान और खुद स्वयं भगवान्के हैं, ऐसा माने। मनुष्यको मनुष्य धोखा दे सकता है, किन्तु भगवान्को कोई धोखा नहीं दे सकता। जो भगवान्को धोखा देता है वह अपने-आपको धोखा देता है। वास्तवमें समर्पण कर दिया तो भगवान्के काममें लगना चाहिये। मुँहसे कहनेपर अर्पण नहीं होता। वास्तवमें समर्पणकी पहचान यह है कि घरके आग लगे, स्त्री मर जाय, लड़का मर जाय तो रोना और चिन्ता नहीं होते। चिन्ता, भय, शोक ये नहीं रहते।

हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः। (गीता १२। १५)

हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेगादिसे रहित है—वह भक्त मुझको प्रिय है।

भगवान् कहते हैं—जो मेरे समर्पण कर देता है वह हानि, लाभ, हर्ष, शोकसे रहित हो जाता है।

अहंताका नाश किस प्रकार होता है? पहले कहता है मैं तुच्छ हूँ, फिर कहता है मैं कुछ भी नहीं, यहाँतक तो वास्तवमें अहंकार है, वह कहना कथनमात्र है। कहे कि मैं चरणधूलि हूँ। पहले छोटा बने, फिर धूलके समान बने फिर अपनेको कुछ भी नहीं समझे, ऐसा वास्तवमें माने। जब अहंता, ममता मिट जाय तो यह अवस्था हो जाती है—

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥ (गीता १२। १८)

जो शत्रु-मित्रमें और मान-अपमानमें सम है तथा सरदी, गरमी और सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें सम है और आसक्तिसे रहित है। जिन चीजोंमें अहंता, ममता है, उन सबको भगवान्के समर्पण कर दिया तो मामला समाप्त हो जाता है।

❑❑

भगवान्‌की लीलाका तत्त्व-रहस्य

भगवान्‌की लीलाका तत्त्व-रहस्य मनुष्य समझ जाय तो भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। निर्गुणका तत्त्व समझ जाय तो परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। भगवान्‌ने अमृत, परमधाम, परमशान्ति, शाश्वत स्थान बताये हैं, ये सब मुक्तिके वाचक हैं।

कई कहते हैं कि भगवान् निर्गुण निराकार हैं, वे साकाररूपसे प्रकट क्यों होते हैं? भगवान् साधुओंका उद्धार करने, धर्मकी स्थापना करने और दुष्टोंका नाश करनेके लिये अवतार लेते हैं। जब संकल्पसे ही वे सब कर सकते हैं, फिर अवतारकी क्या आवश्यकता है? बात यह है कि निर्गुणमें कोई इच्छा होती नहीं, सगुण-निराकारमें इच्छा होती है। भगवान् स्वयं कहते हैं—साधुओंके उद्धारके लिये जन्म लेनेकी आवश्यकता है। निराकारका विषय कठिन है, उसे सब नहीं समझ सकते। साकारका विषय स्त्री, पुरुष, बालक सब समझ सकते हैं। भगवान् प्रकट होकर लीला करते हैं, धर्मका प्रचार करते हैं। भगवान् श्रीकृष्णने प्रेम-भक्तिका प्रचार किया। महाराज श्रीरामने मर्यादाका प्रचार किया। अपना उदाहरण देकर बात समझायी जाती है। दार्शनिक नियमसे बात समझायी जाय तो कठिन है, पर दृष्टान्तसे समझायें तो सहज है। संकल्पमात्रसे परमात्मा सब कुछ कर सकते हैं। सगुण-साकारके रूपमें धर्मका प्रचार बहुत अच्छी तरह हो सकता है। राम-कृष्णके रूपमें प्रचार किया ही है। उनकी प्रत्येक लीलामें तत्त्व, रहस्य भरे रहते हैं, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी एकान्तमें रुक्मिणीजीसे बात कर रहे हैं, उस समय कहा—राजा शिशुपालको छोड़कर तुमने मुझसे विवाह क्यों किया? अपनेमें अनेक दोष भी बताये और शिशुपालकी अनेक प्रकारकी प्रशंसा की। यह सुनकर रुक्मिणीजी मूर्छित हो गयीं। भगवान्‌ने अपनी भुजाओंसे उनको उठाया। भगवान्‌ने कहा—मैंने तो तुमसे हँसी की थी। इस लीलामें

प्रवचन—दिनांक २। ४। १९४७, प्रात:काल ७.३० बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

भगवान्‌ने क्या रहस्य दिखलाया? भगवान्‌का कथन रुक्मिणीजीको प्रिय नहीं लगा, उन्होंने ऐसे वचन सुननेकी अपेक्षा मरना श्रेष्ठ समझा। भगवान् कभी-कभी ऐसी लीला करते हैं। इस प्रकार भगवान्‌ने यह बताया है कि पतिव्रता स्त्री वही है जो रुक्मिणीकी भाँति हो। पतिकी निन्दाकी बात और पर पुरुषकी स्तुतिकी बात सुनकर रुक्मिणीजी मूर्छित हो गयीं, वैसी अवस्था हो जानी चाहिये। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी भी सीताजीसे बड़े कठोर वचन कहते हैं। लंकाविजयके बाद भगवान्‌ने सीताको बुलाया और कहा—हे सीते! मैंने तुझको रावणके फन्देसे छुड़ानेका कर्तव्यपालन कर दिया है। तू एक सालतक रावणके यहाँ रही है, अतएव जहाँ तेरी इच्छा हो वहाँ चली जाओ। यह सुनकर सीताके मनमें यह भाव आया कि ऐसा कठोर जीवन बितानेसे तो मर जाना कहीं अच्छा है। सीताने लक्ष्मणसे चिता बनानेको कहा। भगवान्‌के संकेतसे लक्ष्मणने चिताकी रचना कर दी। सीता उस अग्निमें प्रवेश कर गयीं तो अग्निदेवने प्रकट होकर कहा—हे रामजी! यह सीता विशुद्ध है, इसमें कोई दोष नहीं है। ब्रह्माजी आदि देवताओंने भी उसकी प्रशंसा की। इससे यह शिक्षा लेनी चाहिये कि पतिव्रताको ऐसे वचन सुनाये जायँ तो उसकी स्थिति मरणतुल्य हो जाती है। भगवान् तो सर्वज्ञ थे, वे जानते थे, यदि मैं इस प्रकारकी लीला नहीं करूँ तो लोग सीताको शुद्ध नहीं मानेंगे और मेरे कलंकका टीका लग जायगा। ऐसी सीताको भी फिर प्रजाके सन्तोषके लिये त्याग दिया। राममें प्रजावत्सलता इतनी थी कि निर्दोष सीताका भी त्याग कर दिया। भगवान्‌ने यह दिखला दिया—यद्यपि प्रजाका रुख अनुचित हो, उससे अपना भी बड़ा भारी अनिष्ट हो तो भी अपने स्वार्थका त्याग कर देना चाहिये। राजाओंको यह शिक्षा लेनी चाहिये। स्त्रियोंको शिक्षा लेनी चाहिये कि जैसे सीता महाराज रामके मनके अनुसार चलती थीं, वैसे ही

अपने पतिके अनुकूल चलें। पतिपर दोषारोपण न करें। भगवान्‌की लीलामें नीति-धर्म कूट-कूटकर भरे हैं। भगवान् अवतार लेकर कोई चरित्र करते हैं, वह लीला लीलामात्र है।

युद्धमें घटोत्कच मारा गया तो पाण्डवसेनामें शोक छा गया, सब व्याकुल हो गये। अभिमन्यु और घटोत्कच साधारण वीर नहीं थे। भगवान् मुसकरा रहे हैं। अर्जुनका भगवान्‌में बड़ा प्रेम था, उसने कहा—महाराज! आप शोकके समय हँस रहे हैं, इसमें क्या रहस्य है? बतानेलायक कोई रहस्य हो तो बतायें। तब भगवान्‌ने कहा—मेरा ध्येय है बीजसहित राक्षसोंको मारनेका। घटोत्कच राक्षस था, वह दुश्मनोंके हाथसे मारा गया, यह बड़ा अच्छा हुआ, नहीं तो मुझे उसको मारना पड़ता। दूसरी बात है—कर्णके पास अमोघ शक्ति थी, जो उसने तुम्हें मारनेके लिये रखी थी, वह वीरघातिनी शक्ति एक राक्षसके मारनेके काममें आयी, बड़ी प्रसन्नताकी बात है। अब मैं निर्भय हो गया हूँ। पहले मैं तुम्हें कर्णके सम्मुख नहीं भेज सकता था, तुम्हारे बचावका सदा मुझे ध्यान था। कर्णने तुमको मारनेके लिये ही उस शक्तिको रख छोड़ा था। अब तुम कर्णके सामने जा सकते हो। इस रहस्यको समझाया तो अर्जुन प्रसन्न हो गया। कहीं-कहीं रहस्य प्रतीत नहीं भी हो तो हमारी समझमें कमी है।

एक समय भगवान् श्रीकृष्ण शयन कर रहे हैं। युद्धमें सहायताके लिये पहले दुर्योधन गया और महाराजके सिरहानेकी तरफ जाकर बैठ गया। बादमें अर्जुन गया, वह चरणोंकी तरफ बैठ गया। महाराज जब जगे तो पहले अर्जुनको देखा। महाराजने पूछा—अर्जुन! तू क्यों आया है? इतनेमें दुर्योधन भी बोल उठा—महाराज! मैं भी आपके पास आया हूँ और अर्जुनसे पहले आया हूँ। दुर्योधनसे पूछा—क्यों आये हैं? दुर्योधन बोला—आप जानते हैं पाण्डवोंके साथ हमारा युद्ध होनेवाला है, हम आपसे सहायता चाहते हैं, शायद अर्जुन भी इसी कामके लिये आया होगा। महाराजने कहा—मैंने अर्जुनको

पहले देखा है और तुम पहले आये हो, इसलिये मैं दोनोंकी सहायता करूँगा। अर्जुनसे कहा—एक तरफ मेरी एक अक्षौहिणी नारायणी-सेना और दूसरी तरफ मैं अकेला निःशस्त्र रहूँगा, तुमको जो इच्छा हो वह माँग लो। अर्जुनने तो भगवान्‌को माँग लिया और दुर्योधनकी प्रसन्नताके अनुसार एक अक्षौहिणी नारायणी-सेना उसे मिल गयी। रास्तेमें दुर्योधनने अपने मन्त्रियोंसे कहा—आज मैंने कृष्णको ठगकर उसकी नारायणी-सेना ले ली।

दुर्योधन चला गया तो भगवान्‌ने अर्जुनके साथ लीला की। अर्जुनको डाँटा—तूने क्या मूर्खता की जो मुझ अकेले निःशस्त्रको माँग लिया। तुझे मैंने चाहकर पहले मौका दिया था। अर्जुन तो भगवान्‌के रहस्यको जानता था। बोला—महाराज! मैं तो आपको ही चाहता हूँ। मैं तो आपके हाथसे मेरा रथ हँकवाऊँगा। भगवान् ऊपरसे तो धमकाते हैं, किन्तु भीतरमें यह भाव है कि अर्जुनने जो किया ठीक किया, यह रहस्य है। भगवान् जानते थे कि यदि मैं कहूँ कि मैं शस्त्रसहित रहूँगा तो शायद दुर्योधन मुझे माँग लेगा, अतएव अपनेको निःशस्त्र रहनेको ही कहा। दुर्योधन आकर सिरकी तरफ बैठा और विजय चाहता है। चतुर होकर भी दुर्योधनने मूर्खता की। भगवान्‌ने बड़ी चतुराईका जवाब दिया—तू आया पहले, किन्तु मैंने अर्जुनको पहले देखा है। अर्जुन चरणोंकी तरफ बैठा है तो विजय अर्जुनकी होनी चाहिये। भगवान्‌के रहस्यको जाननेवाला होगा वह भगवान्‌को ही लेगा। अर्जुन चरणोंकी तरफ बैठा, इससे शिक्षा लेनी चाहिये कि जिससे मदद लेनी हो, उसके चरणोंमें बैठना चाहिये। अर्जुन रहस्य जानता था कि जिधर भगवान् होंगे, उधर ही विजय होगी।

भगवान्‌की चीरहरण-लीलामें तत्त्व-रहस्य—

अध्यात्मविषयमें घटायें तो गोपियाँ इन्द्रियाँ हैं; आभूषण विषय हैं, विषयोंको इन्द्रियोंसे हटाना है। कदम्बका वृक्ष उपरति है। इन्द्रियाँ वस्त्र माँगती हैं और वे अधीनता स्वीकार कर लेती हैं तो विषय दे दिये जाते हैं।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥ (गीता २।६४)

अपने अधीन किये हुए अन्तःकरणवाला साधक अपने वशमें की हुई, राग-द्वेषसे रहित इन्द्रियोंद्वारा विषयोंमें विचरण करता हुआ अन्तःकरणकी प्रसन्नताको प्राप्त होता है।

भगवान् इन्द्रियोंको वशमें करनेकी शिक्षा देते हैं। भगवान् दिखलाते हैं कि—

१. जलमें नग्न होकर स्नान नहीं करना चाहिये।

२. स्त्रियोंके लिये लज्जा ही सबसे बढ़कर है, उनको ज्यादा-से-ज्यादा दण्ड दिया तो हाथ जोड़कर कपड़े माँग लेनेको कहा।

३. भगवान्‌की प्राप्तिके लिये स्त्रियाँ कात्यायनीजीका व्रत करती थीं तो भगवान् मिल गये।

४. भगवान्‌की अवस्था उस समय ८-९ वर्षकी थी, उनमें दोषकी बात नहीं थी। भगवान् तो सब जगह हैं। पाप, दोष-दृष्टिकी बात नहीं है।

५. ईश्वरके नाते, पतिके नाते, बालकके नाते, भगवान्‌के लिये दोषकी बात नहीं है।

निराकाररूपसे भगवान् सबको देख रहे हैं।

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥ (गीता १३।१३)

वह सब ओर हाथ-पैरवाला, सब ओर नेत्र, सिर और मुखवाला तथा सब ओर कानवाला है। क्योंकि वह संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित है।

कोई भी स्थान ऐसा नहीं जो भगवान्‌से खाली हो फिर उनसे छिपाव ही क्या है। भगवान्‌की लीलामें तत्त्व-रहस्य समझमें आ जाय तो मनुष्य मुक्त हो जाता है।

❑❑

ज्ञाता, ज्ञान तथा ज्ञेयका विवेचन

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्॥ (गीता १३। ३४)

इस प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके भेदको तथा कार्यसहित प्रकृतिसे मुक्त होनेको जो पुरुष ज्ञान-नेत्रोंद्वारा तत्त्वसे जानते हैं, वे महात्माजन परम ब्रह्म परमात्माको प्राप्त होते हैं।

इस श्लोकमें सब बाते हैं। जो मनुष्य ज्ञान-नेत्रोंके द्वारा क्षेत्र-क्षेत्रज्ञके अन्तरको जानता है। क्षेत्र—देह जड़, नाशवान् है। क्षेत्रज्ञ आत्मा है, वह नित्य है, साक्षी है, आनन्दमय, निराकार और अनन्त है। वह क्षेत्रसे अत्यन्त विलक्षण है, जमीन-आसमान इतना फर्क है। इससे भी ज्यादा फर्क है। भूत=कार्य, प्रकृति=कारण, कार्य तथा कारणके साथ मोक्षको जो जानता है, मोक्ष=अभावको जो जानता है वह '**परम्**' को प्राप्त हो जाता है। ज्ञान-तत्त्व द्वार है, भूत-प्रकृति ये ज्ञेय हैं। ज्ञानचक्षुसे ज्ञेयको जानता है उसे मुक्तिकी प्राप्ति हो जाती है। यहाँ '**परम्**' जो प्रापणीय वस्तु है, वह ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयसे परेकी चीज है। ज्ञाता परमको प्राप्त होता है। ज्ञातृत्व-शक्तिसे परे '**परम्**' है। वह ज्ञाननेत्रसे जानता है, जाननेका फल '**परम्**' है। जो जाननेमें आये वह सब-का-सब ज्ञेय है। जाननेवाला क्षेत्रज्ञ है। क्षेत्रज्ञको जो जानता है वह ज्ञानचक्षुसे जानता है, आत्माको जानता है वह भी ज्ञानचक्षुसे जानता है। जाननेके साथ ही जाननेवाला परमको प्राप्त हो जाता है। फिर ज्ञान भी '**परम्**' को प्राप्त कराकर शांत हो जाता है। ज्ञाताकी श्रेणी ज्ञान और ज्ञेयसे ऊँची है तथा ज्ञातासे परे है वह '**परम्**' है।

प्रवचन—दिनांक २। ४। १९४७, सायंकाल ६.१५ बजे, गंगाकिनारे, स्वर्गाश्रम।

परमात्माका सगुण-निराकार तत्त्व इस प्रकार बताया है—

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते॥ (गीता १३।१२)

जो जाननेयोग्य है तथा जिसको जानकर मनुष्य परमानन्दको प्राप्त होता है, उसको भलीभाँति कहूँगा। वह अनादिवाला परमब्रह्म न सत् ही कहा जाता है, न असत् ही।

भगवान्ने बड़ा तात्त्विक विवेचन किया है। साधन करनेसे, सुननेसे समझमें आता है। ज्यों-ज्यों आगे बढ़े त्यों-त्यों समझमें आता है। कामसे काम सीखता है, वैसे ही साधन करनेसे आगे समझमें आता है। यह अच्छा साधन है।

जिसका देहमें अभिमान है, उसके लिये दूसरा प्रकार है और जिसका देहमें थोड़ा अभिमान है, उसके लिये दूसरा प्रकार है।

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्॥ (गीता १३।१५)

वह चराचर सब भूतोंके बाहर-भीतर परिपूर्ण है, और चर-अचररूप भी वही है और वह सूक्ष्म होनेसे अविज्ञेय है तथा अति समीपमें और दूरमें भी स्थित वही है।

वह परमात्मा शरीरमें, सब भूतप्राणियोंमें मौजूद है, विज्ञानानन्दघन परमात्मामें अपने-आपको डुबो दे। विज्ञानानन्दघनका स्वरूप जैसा समझमें आये, उसीमें डुबो दे। देहमें अहंकार रहते हुएका यह साधन है।

बुद्धि आदि सब पदार्थ मायिक हैं। इनका त्याग कर दे, त्याग करनेवाली वृत्तिका त्याग कर दे। स्फुरणारहित, संकल्परहित हो जाय, बादमें जो बच जाय वही आत्मा है, वही सच्चिदानन्दघन है। अन्य किसीका ज्ञान न रहे। उसका ज्ञान उसीको है, चेतनताकी जागृति रहे, चेतनताकी बाहुल्यता, ताजगी रहे—यह

उच्चकोटिका साधन है। इसे ध्यान कह दो, चाहे ब्रह्माकार वृत्ति कह दो। चेतनताकी जागृति रहनेसे आलस्य आ ही नहीं सकता, क्योंकि वहाँ सुख-आनन्दको ही अपने-आपका ज्ञान है। ऐसी चीजकी हर वक्त जागृति रहे।

व्यवहारकालमें द्रष्टा साक्षीका ध्यान ठीक है। जो कुछ दीखता है वह सब मायामात्र है, प्रतीत होता है, दृश्यमात्र, ज्ञेयमात्र है, वह सब संकल्पमात्र है, स्वप्नवत् है। समझनेवाला है वह चेतन आत्मा है। साधन और ब्रह्म एक ही धातुके होते हुए ब्रह्मके भीतर यह प्रतीति हो रही है, जबतक ब्रह्म और साधक दो हैं। ब्रह्मकी दृष्टिसे तो तिरवरे हैं नहीं, ब्रह्ममें दूसरे ही दीख रहे हैं। देखनेवाला यही देख रहा है कि ये हैं नहीं, दीख रहे हैं। प्राप्त होनेपर द्रष्टा, साक्षी या चेतन आत्मा ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है, बुद्धि शान्त हो जाती है। थोड़े ही समयमें संसार संकल्पमात्र प्रतीत होने लगता है। उसकी स्थिति परमात्मामें हो जाती है। जैसे और शरीरोंसे उसका सम्बन्ध नहीं, वैसे ही इस शरीरसे भी उसका सम्बन्ध हट जाता है। उसकी स्थिति देहमें नहीं रहती, देह उसको पर दीखता है। देहके मान-अपमानसे उसको कोई हानि-लाभ नहीं होता।

यहाँ ब्रह्म साक्षी द्रष्टा है, सर्वज्ञ है, सर्वदेशीय है। मैं क्षेत्रसे अत्यन्त विलक्षण हूँ, विलक्षणको जाननेका फल है परमकी प्राप्ति। ज्ञान आत्माको है। '**क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरम्**' में ज्ञान द्वार है। क्षेत्रको जाने वह क्षेत्रज्ञ है। वह क्षेत्रज्ञ भी अपने-आपको ज्ञाननेत्रसे जानता है। जाननेमें आनेवाला जीवात्माका स्वरूप बुद्धिविशिष्ट है और जाननेमें आनेवाला ब्रह्मका स्वरूप भी बुद्धिविशिष्ट है। इतना फर्क है कि आत्मा एकदेशीय है और परमात्मा सर्वदेशीय है। ज्ञान ज्ञाता नहीं है ज्ञाताका द्वार (साधन)

है ज्ञान। परमात्माका ज्ञान है और स्वयं अपना ज्ञान भी साधकको है, उस सबको ज्ञाता जानता है। एकसे दूसरा श्रेष्ठ है, सूक्ष्म है और महान् है। ज्ञेयसे ज्ञान, ज्ञानसे ज्ञाता और ज्ञातासे परमात्मा विलक्षण है। इन सबका ज्ञानरूप फल है वह सबसे विलक्षण है। वह फलरूप भी परमात्माका स्वरूप ही है। अमृत है वह फलरूप है। बुद्धिसे मिला हुआ तत्त्व ही जाना जाता है, वह सगुण है। ज्ञेयसे ज्ञान विलक्षण और सूक्ष्म है। ज्ञानमें ज्ञेय समाया हुआ है। ज्ञान बड़ा है और सूक्ष्म है। ज्ञेयकी अपेक्षा ज्ञान अमूर्त है। ज्ञेयके द्वारा ज्ञान नहीं जाना जाता। ज्ञानके द्वारा ज्ञेय जाना जाता है। ज्ञेयकी अपेक्षा ज्ञान श्रेष्ठ, सूक्ष्म, चेतन और बड़ा है। ज्ञाताके आगे ज्ञानरूपी ज्योति भी जड़ है। ज्ञेय भी ज्योति है। पर उससे विलक्षण ज्योति ज्ञान है। ज्ञानसे ज्ञातारूपी ज्योति बहुत विलक्षण है। ज्ञान ज्ञातामें है, अतएव ज्ञान अल्प है। ज्ञाताका भी ज्ञान ज्ञाताको होता है, वहाँ भी द्वार ज्ञान ही है। ज्ञानका ज्ञान भी ज्ञाताको है। अपने-आपका ज्ञान भी ज्ञाताको है। ज्ञान निराकार चेतन होते हुए ज्ञाताका विषय है। ज्ञान ज्ञाताको नहीं जानता। परमात्माके ज्ञान और जीवके ज्ञानमें फर्क है। परमात्माकी बुद्धि समष्टि है और जीवकी बुद्धि व्यष्टि है। सब व्यष्टि बुद्धियाँ मिलकर भी समष्टि बुद्धिके समान नहीं हो सकतीं। समष्टि बुद्धिकी शाखा व्यष्टि बुद्धि है। महत्तत्त्व समष्टि बुद्धि है। परमात्माका ज्ञान जीवके ज्ञानकी अपेक्षा महान् है। जीवका ज्ञान और जीवका स्वरूप अल्प है। उसके आगे परमात्माका ज्ञान, परमात्माका स्वरूप बड़ा है।

बुद्धि दीखती है। जीवोंकी नाना बुद्धि भी दीख रही है। प्रत्येक जीव देहका अभिमानी बना हुआ दीख रहा है। जीवकी स्थिति एक-देशमें दीख रही है। ज्ञानके सिद्धान्तके अनुसार

परमात्माका यथार्थ ज्ञान हो जाय तो परमात्मा सब भूतोंमें अविभक्तरूपसे है—

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्। (गीता १३। १६)

वह परमात्मा विभागरहित एकरूपसे आकाशके सदृश परिपूर्ण होनेपर भी चराचर सम्पूर्ण भूतोंमें विभक्त-सा स्थित प्रतीत होता है।

चेतनका स्वरूप देहमात्रमें ही नहीं वह महान् है। घड़ेका आकाश घड़ा फूट जानेपर महाकाशमें मिल जाता है। फिर वह घड़ेका आकाश अनन्ताकाशमें शामिल हो जाता है। अनन्ताकाश पहलेसे भी था, पर घड़ेके कारण उपाधि थी, वैसे ही जीव अज्ञानके कारण भिन्न दीख रहा है। अज्ञानके नाशसे जीवात्मा परमात्माको प्राप्त हो जाता है—यह वेदान्तका सिद्धान्त है। परमात्माकी प्राप्तिके बाद वास्तविक प्राप्ति है, वह मन, वाणीका विषय नहीं है, सबसे परे है। बुद्धिकी वृत्ति ज्ञान होनेके कारण जड़ है। बुद्धि और बुद्धिकी वृत्ति भी समझमें आती है। ज्ञानकी मात्राको ज्ञाता जानता है, किन्तु आत्माका ज्ञान बुद्धिको नहीं। आत्मा अपने-आपको ही जानता है। बुद्धि साधन है, साधक जीवात्मा है, प्रापणीय परमात्मा है, वह सबसे श्रेष्ठ है। वह प्राप्त हो जाय तो साधकका साधकपना भी मिट जाता है और भेद भी मिट जाता है।

❑❑

भावका फल

एक दामी आजमाइश की हुई बात—एक आदमी बैठा-बैठा दुःखकी कल्पना करने लग जाता है, कमीको याद करता-करता दुःखी हो जाता है। सुखमें था, दुःखका भाव करनेसे दुःखी हो गया। एक आदमी अभावकी हालतमें भी सुखका भाव करता है—कुत्तेकी अपेक्षा अपनेको अधिक सुखकी कल्पना कर रहा है। कुत्तेके घर-बार नहीं, वस्त्र नहीं, विवेक नहीं, हमारे ये सब साधन हैं, इसमें भगवान्‌की कितनी बड़ी कृपा है। भगवान्‌ने लौकिक और पारलौकिक कितनी मदद दे रखी है। लौकिक सुख हवा, रोशनी, जल सब दे रखे हैं, जिनसे हम सुखसे जीवन व्यतीत कर सकें। पशु मनुष्योंके अधीन है। हमारे कोई बन्धन नहीं, किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं। सांसारिक सुख, रुपया, स्त्री—किसीकी आवश्यकता नहीं। भगवान्‌ने कलियुगका समय दिया, हिन्दुस्तान देश, गंगाका किनारा, सत्संग, पुस्तकें सस्ती मिल रही हैं, ईश्वरने बड़ी कृपा कर दी। हमें सब बातका आनन्द है। सब प्रकारसे सुखी हैं। भगवान् आनन्दमय हैं। हम उनका ध्यान करते हैं, वह आनन्द हमारे चारों तरफ रोम-रोममें, मन-बुद्धिमें व्यापक है। वह शान्ति, ज्ञान, आनन्द ऐसा मालूम पड़ता है कि यह परमात्माका स्वरूप है। परमात्मा चेतन है। उसका संकल्प संसार है। वह संकल्प उठा दे तो संसार मिट जाता है। भगवान् सत् हैं, इसलिये उनका संकल्प भी सत्-सा प्रतीत होता है, सांसारिक सुखसे परमात्माका सुख अत्यन्त विलक्षण है। परमात्माके सम्बन्धसे जो सुख मिलता है, वह सात्त्विक सुख जड़ है। परमात्मसुख परमात्मा बनकर ही जाना

प्रवचन—दिनांक ३। ४। १९४७, प्रातःकाल ७.३० बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

जाता है। लौकिक सुख अल्प है, एकदेशीय है और वह सुख महान् है, सर्वदेशीय है। लौकिक सुख उस सुखका आभासमात्र है और परमात्माका सुख असली है। लौकिक सुख कायम नहीं रहता और परमात्माका सुख नित्य है।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। (गीता २।१६)

असत् वस्तुकी तो सत्ता नहीं है और सत्‌का अभाव नहीं है।

बुद्धिके द्वारा सत्-चित्-आनन्द भेदरूपसे दीख रहा है, वह मायासे मिश्रित है। माया यहाँसे हट जाय तो असली परमात्माका स्वरूप मालूम पड़ जाय। परमात्मा चेतन है, चेतन ही आनन्द है। इस तरह धारणा करनेसे वह चेतन ही, आनन्द ही रह जाता है।

वह आनन्द पूर्ण है, परिपूर्ण है, अल्प नहीं है। पूर्णानन्द, अपार आनन्द, शान्त आनन्द, घन आनन्द, अचल आनन्द, ध्रुव आनन्द, नित्य आनन्द, बोधस्वरूप आनन्द, ज्ञानस्वरूप आनन्द, परम आनन्द, महान् आनन्द, अनन्त आनन्द, सम आनन्द, अचिन्त्य आनन्द, चिन्मय आनन्द, एकमात्र आनन्द-ही-आनन्द परिपूर्ण है।

❑❑

भगवान्‌का साकार स्वरूप

भगवान्‌के प्रकट होनेके पूर्व नेत्रोंको बन्द करनेपर भी शान्तिमय प्रकाश प्रतीत होता है। भगवान् प्रेमकी मूर्ति हैं। उनके प्रकट होनेके पूर्व शान्ति, आनन्द और ज्ञानका प्रकाश छा जाता है। परमात्म-तत्त्व चेतन तत्त्व है—केवल चेतन है। समष्टि बुद्धिके साथ शामिल हो तो वह विज्ञानमय रूपमें प्रकट होते हैं। भगवान् दो रूपसे प्रकट होते हैं— माया (प्रकृति)-के अधिष्ठान मालिक होकर प्रकट होते हैं एवं दिव्य गुणोंसे सम्पन्न होकर प्रकट होते हैं, भक्तोंको दर्शन होते हैं, उस दिव्यरूपमें प्रकट होते हैं और साधारण पुरुषोंको दिव्यरूपमें नहीं दीखते, साधारणरूपसे दीखते हैं। भगवान्‌ने कहा है—

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्॥ (गीता ७। २५)

अपनी योगमायासे छिपा हुआ मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता, इसलिये यह अज्ञानी जनसमुदाय मुझ जन्मरहित अविनाशी परमेश्वरको नहीं जानता अर्थात् मुझको जन्मने-मरनेवाला समझता है।

चेतन बोधरूपसे बुद्धिके समझमें आते हैं, फिर प्रकाशमयरूप ज्योतिस्वरूपवाले होते हैं और ज्योतिस्वरूपसे आकारवाले प्रकट हो जाते हैं, विष्णु, राम, कृष्ण आदिके रूपमें हो जाते हैं। परमात्मा ज्ञान, आनन्दके रूपमें सदा विराजमान रहते हैं और प्रेम हो तो वे प्रत्यक्ष हो जाते हैं। शिवजी कहते हैं—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

हमें उनका आवाहन करना चाहिये, बुलाना चाहिये। हे नाथ! हे हरि! हे गोविन्द! आप क्यों विलम्ब कर रहे हैं।

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव॥

प्रवचन—दिनांक ४। ४। १९४७, प्रात:काल ७.३० बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

करुणाभावसे विह्वल होकर भगवान्‌का आवाहन करना चाहिये।

एक बात मैं पूछहुँ तोही। कारन कवन बिसारेहु मोही॥

आप हमारे प्रेमकी तरफ देखेंगे तो हमारे उद्धारमें शंका है। भरतजी कहते हैं—

जो करनी समुझहिं प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी॥
जन अवगुन प्रभु देख न काऊ। दीनबन्धु अति मृदुल सुभाऊ॥

इससे विश्वास होता है कि ध्यानमें आपके दर्शन होंगे।

मोसे दास बहुत जग माहीं। तोसे नाथ जगत केउ नाहीं॥

सारी दुनियामें प्रकाश, शान्ति और प्रेम छा गया है, प्रसन्नता छा गयी है, वातावरण अच्छा है। भगवान्‌की कृपा कैसी अलौकिक है। भगवान् प्रकट होनेवाले हैं। नेत्रोंको बंद करनेपर भगवान् प्रकाशके रूपमें प्रतीत हो रहे हैं, वे ही निराकार तेजोमय ज्ञानस्वरूप ही महान् दीप्तिमान प्रकाशके रूपमें हैं। शान्तिमय प्रकाश सारे संसारमें छाया हुआ है। सूर्यसे बढ़कर तेज और चन्द्रमासे बढ़कर शान्तिमय प्रकाश है। सूर्य और चन्द्रमामें जो प्रकाश है वह भगवान्‌से ही है।

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥ (गीता १५। १२)

सूर्यमें स्थित जो तेज सम्पूर्ण जगत्‌को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चन्द्रमामें है और जो अग्निमें है—उसको तू मेरा ही तेज जान।

वे प्रकाशके पुंज ही कृष्णके रूपमें प्रादुर्भाव होनेवाले हैं। नेत्रोंको बन्द करके हमको ध्यान करना चाहिये कि निराकार तेजोमय भगवान् आकाशमें कृष्णके रूपमें प्रकट होनेवाले हैं। कैसी शान्ति, प्रसन्नता और आनन्द छा रहा है। आनन्द! आनन्द! आनन्द!

नाथ सकल साधन कर हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना॥

भगवान् आकाशमें आकर प्रकट हो गये। दिव्य स्वरूप है। पूर्णिमाके चन्द्रमासे बढ़कर शान्ति और प्रकाश है। चन्द्रमण्डलके समान भगवान्‌की तेजोमय मूर्ति है और चन्द्रमाके प्रकाशके समान उनका प्रकाश है। भगवान् आकाशमें खड़े हैं और प्रेमकी दृष्टिसे देख रहे हैं। मेघके समान भगवान्‌का वर्ण है, प्रकाशमय है, तेजके पुंज हैं, श्यामवर्णके-से प्रतीत होते हैं। आकाशमें स्थित होकर बंशी बजाते हुए नृत्य कर रहे हैं, मानो रास कर रहे हों। भगवान्‌के चरण बड़े कोमल, सुन्दर, चमकीले और श्यामवर्णके हैं। पैरके तलवोंमें गुलाबी रंगकी झलक है। अनेक रेखाएँ हैं तथा चक्र, यव, ध्वजा, पताका और ऊर्ध्वरेखा है। चरणका ऊपरी भाग श्यामवर्णका है। चरणोंके नाखून चमक रहे हैं, मानो रत्नके टुकड़े चमक रहे हों। चरणारविन्द सुन्दर और चमकीले हैं। ग्रीवा, घुटने और जंघा बड़े सुन्दर हैं। भगवान्‌ने पीताम्बर धारण किया हुआ है जो बड़ा चमकीला है। चरणोंमें नूपुर धारण किये हुए हैं, जिनकी ध्वनि बड़ी कर्णमधुर है। स्वरूप मधुर है। पीताम्बरमेंसे भगवान्‌का स्वरूप चमक रहा है। करधनी रत्नजटित है। कमर पतली और नाभि गंभीर है। दो भुजाएँ हैं, जो घुटनोंसे नीचेतक लम्बी हैं। बंशी बजा रहे हैं, तिरछे खड़े हैं, टेढ़ी कमर है, ग्रीवा, नेत्र, मुकुट सब टेढ़े हैं।

गलेमें फूलोंकी, सुवर्ण तथा रत्नोंकी अनेक मालाएँ हैं, कौस्तुभमणि धारण किये हुए हैं। छाती चौड़ी, सुन्दर और विशाल है। कंठ सुन्दर है, दोनों भुजाओंमें बाजूबन्द धारण किये हुए हैं। हाथोंमें अंगूठी है, भुजाएँ बड़ी सुन्दर तथा कोमल हैं। मालाओंमें पुष्पोंके साथ तुलसी भी है। रत्नोंकी मालाओंमें घुंघुची है। हृदयमें लक्ष्मीका चिह्न, कौस्तुभमणि और भृगुलताका चिह्न

है। ओष्ठ मणिकी तरह लाल हैं। नासिका सुन्दर है और उसमें मुक्ताफल लगा हुआ है। कपोल गुलाबी रंगके हैं, उनमें लाल रंगकी झलक है। मकराकृत सुवर्णके सुन्दर कुण्डल हैं। नेत्रोंसे प्रेमपूर्वक भगवान् देख रहे हैं। नेत्र बार-बार गिराते हैं। नेत्र खंजन पक्षीकी भाँति चपल हैं। नेत्रोंमें लाल रंगके डोरे हैं। भगवान् आकाशमें खड़े हुए प्रेम और आनन्दकी वर्षा नेत्रोंसे कर रहे हैं। जैसे पूर्णिमाकी रात्रिमें चन्द्रमा अमृतकी वर्षा करता है, वैसे ही भगवान् ज्ञान, समता, शान्ति, दया, प्रेम आदि गुणोंकी वर्षा कर रहे हैं। तेज प्रभाव है, उसकी वर्षा कर रहे हैं। भगवान् प्रेम, दया और आनन्दकी दृष्टिसे देख रहे हैं। मन्द-मन्द हँस रहे हैं, वह हँसी मोहित करनेवाली है। उनकी मुसकान, देखना अलौकिक है, कुण्डलोंकी झलक गालपर पड़ रही है, जिससे वे बड़ी शोभा पा रहे हैं। केश छल्लेदार और बड़े चमकीले हैं। सिरपर मुकुट है जिसमें घुंघुची और रत्न जड़े हुए हैं। भगवान्‌के मुखारविन्दमें बड़ा प्रकाश है। शरीरमें बड़ा प्रकाश है जो एक ब्रह्मचारीके शरीरमें होता है। भगवान्‌में चन्द्रमासे बढ़कर शीतलता और सूर्यसे बढ़कर महान् प्रकाश है।

❑❑

राग-द्वेष मिटानेके उपाय

इस समय काम, क्रोध, लोभ, मोह सबको मारनेकी सबसे बढ़कर आवश्यकता है। भगवान् कहते हैं—

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्॥ (गीता ३। ४३)

इस प्रकार बुद्धिसे पर अर्थात् सूक्ष्म, बलवान् और अत्यन्त श्रेष्ठ आत्माको जानकर और बुद्धिके द्वारा मनको वशमें करके हे महाबाहो! तू इस कामरूप दुर्जय शत्रुको मार डाल।

'काम' पाप करानेमें हेतु है। पापसे दुःख होता है, अतएव कामको मारना चाहिये। काम-क्रोधको मारनेके लिये अभ्यास और वैराग्य है। भगवान्के नामका जप और स्वरूपका ध्यान अभ्यास है और संसारका त्याग वैराग्य है। देश, प्राण, इज्जत, जाति, कुटुम्बकी रक्षाके लिये हर एक भाईको लाठी, हथियार रखना चाहिये और उनको चलानेकी युक्ति भी जाननी चाहिये। काम-क्रोधपर तो पहलेसे ही धावा बोल दे तो अच्छी बात है, किन्तु बाहरके प्रतिपक्षीको अपनी आत्मरक्षाके लिये ही धावा करना चाहिये। कोई बलात्कार करनेवाला हो, अन्यायी हो, उसका प्रतीकार करना प्रत्येक हिन्दू सनातन धर्मीका कर्तव्य है। भयभीत होकर भागना कायरता है। जो कायरतासे मरता है उसकी दुर्गति होती है और जो सन्मुख होकर मरता है उसकी वही उत्तम गति होती है जो गति भगवान्के भजन-ध्यान करनेसे होती है। गीता कहती है—

'स्वधर्मे निधनं श्रेयः'

संसारमें शूरवीरता सबसे बढ़कर है। दोनों प्रकारकी शूरवीरता चाहिये। काम-क्रोधके नाशके लिये भजन, ध्यान, सत्संग—ये गोले हैं और बाहरी शत्रुके लिये बाहरी औजार हैं। इस घोर समयमें

प्रवचन—दिनांक ६। ४। १९४७, प्रातःकाल ७.३० बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

हमें बल पैदा कर लेना चाहिये ताकि इन आततायी गुण्डोंकी ताकत ही नहीं हो कि वे हमला कर सकें। सदा सावधान होकर निर्भय विचरना चाहिये।

बहुत-सी ऐसी बातें हैं जिनमेंसे एक भी समझमें आ जाय तो अपना कल्याण हो जाता है। एक समय देवता ब्रह्माजीके पास गये और कहा हमको असुर दबाते हैं, कोई उपाय बतायें। ब्रह्माजीने कहा—तुम भगवान्‌की आराधना करो। इससे तुम अमर हो जाओगे। यों तो देवता अमर हैं ही, पर वहाँसे उनका पतन होता है। राग-द्वेषरहित होकर सबमें समबुद्धि करो, सब जगह परमात्माको देखो। जो प्रतीत हो उसमें ब्रह्मबुद्धि करो। जैसा गीतामें बताया है—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥ (गीता ७। १९)

बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें तत्त्वज्ञानको प्राप्त पुरुष, सब कुछ वासुदेव ही हैं—इस प्रकार मुझको भजता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।

इस प्रकारका साधन बड़ा ऊँचा है। संसारको हम नानारूपमें देख रहे हैं, उसको नानारूपमें नहीं देखकर एक परमात्मरूप देखना चाहिये। यह एक बड़ा अच्छा उपाय है। देवता इस प्रकार करने लगे तो राक्षसोंने विघ्न करना शुरू कर दिया। एक रागकी चीज और दूसरी द्वेषकी चीज उनके सामने लाकर खड़ी कर दी, जिनसे उनके बलात्‌से राग-द्वेष हो गया। देवता फिर ब्रह्माजीके पास गये और कहा—आपने ब्रह्मबुद्धि करनेका बड़ा अच्छा उपाय बताया पर राक्षसोंने विघ्न खड़ा कर दिया, जिससे हमारे राग-द्वेष हो गया।

ब्रह्माजीने कहा—दूसरा साधन करो। तुम एकान्तमें बैठ जाओ और जो भी कुछ संकल्पमें आ जाय, उसमें परमात्मबुद्धि करो। देवता अचिन्त होकर बैठ गये। अच्छे-अच्छे संकल्प करने लगे,

उनमें भगवद्‌बुद्धि करने लगे। राक्षसोंको मालूम हुआ तो उन्होंने उनके अन्दर प्रवेश करके अनुकूल और प्रतिकूल संकल्प उठाना शुरू कर दिया। देवता फिर ब्रह्माजीके पास गये और सब बात कही। ब्रह्माजीने कहा—अब तुम शब्दब्रह्मकी उपासना करो। देवताओंने यही किया। अब राक्षस आये तो देवताओंकी कभी प्रशंसा और कभी निन्दा करना प्रारम्भ किया। देवताओंके पुनः राग-द्वेष पैदा हो गया।

देवता फिर ब्रह्माजीके पास गये। सब उपाय करनेपर पेश नहीं पाया तो ब्रह्माजीने उपाय बताया—श्वास, प्राणोंके द्वारा ब्रह्मकी उपासना करो। देवता उपासना करने लगे तो असुर फिर आये। राक्षस प्राणोंमें विघ्न नहीं कर सके। राक्षस हार गये और देवता अमर हो गये। देवता लड़े और विजयी हो गये। अतएव—

(१) सब परमात्माका स्वरूप है ऐसा समझे।

(२) सब शब्दमें परमात्माका स्वरूप समझे।

(३) मनका संकल्प परमात्माका स्वरूप समझे।

(४) शरीरमें श्वास जाता-आता है उसमें नामका जप जोड़ दे।

इस घोर कलिकालमें नामका जप सबसे बढ़कर है। श्वास प्राणमें कोई विघ्न नहीं कर सकता। मन इधर-उधर भाग जाता है तो उपासनामें विघ्न आ जाता है। प्राण भागते नहीं, ये जड़ ठहरे। इनके द्वारा उपासना करनी चाहिये। भगवान्‌के नामरूपी मंत्रका संयोग कर दे। नाम बड़ा सुगम उपाय है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

(विष्णुपुराण १। ४१। १५)

कलियुगमें केवल श्रीहरिका नाम ही, हरिका नाम ही, हरिका नाम ही परम कल्याण करनेवाला है। इसको छोड़कर अन्य कोई उपाय नहीं है, नहीं है, नहीं है।

इस न्यायसे भगवान्‌के नामका जप करे तो अच्छी बात है। मेरे

तो श्वासोंके द्वारा जपनेका अभ्यास है। श्वास चलता है, इसे कुछ तेज कर लेते हैं। हृदयके पाप विकार दूर चले जाते हैं, जैसे जोरकी हवासे कूड़ा-कर्कट उड़ जाता है। भगवान्‌ने गीतामें उपदेश दिया है—

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः॥ (गीता ४। २९)

दूसरे योगीजन अपानवायुमें प्राणवायुको हवन करते हैं, वैसे ही अन्य योगीजन प्राणवायुमें अपानवायुको हवन करते हैं तथा अन्य योगीजन प्राण और अपानकी गतिको रोककर प्राणायामके परायण होते हैं।

प्राण खूब बलवान् हैं, इस प्रकार प्राणायाम करनेसे परमात्मा मिल जाते हैं। प्राण बलवान् हैं, ये पापोंका और दुर्गुणोंका नाश कर देते हैं।

इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, प्राण सबमें एक बार झगड़ा हो गया और वे आपसमें लड़ने लगे। वे ब्रह्माजीके पास गये और अभिमान करके कहने लगे कि हम बलवान् हैं। ब्रह्माजीसे कहा—आप निर्णय कर दें कि हमारेमें कौन बलवान् है। बादमें ब्रह्माजीने एक मनुष्यके पुतलेकी रचना की और कहा तुम सब इसमें प्रवेश कर जाओ। सब प्रवेश कर गये। फिर ब्रह्माजीने नेत्रोंसे कहा—तुम बाहर चले आओ। नेत्रोंके बाहर निकल आनेपर भी वह जीवित ही रहा तो नेत्रोंको फिर उसमें प्रविष्ट करा दिया। ऐसे एक-एक करके सब इन्द्रियोंको बाहर निकाला, किन्तु वह नहीं मरा। बादमें मनको बाहर निकाला, उससे भी कोई हानि नहीं हुई। छोटे बच्चेमें मन नहीं रहता है, बुद्धिके निकलनेपर भी वह नहीं मरा, छोटे बच्चेमें बुद्धि नहीं रहती। तब ब्रह्माजीने प्राणोंसे हटनेको कहा तो सब इन्द्रियाँ, मन, बुद्धिने कहा कि प्राणोंके निकलनेपर हम यहाँ नहीं रह सकेंगे। अन्तमें सबने यही निर्णय दिया कि सबमें प्राण बलवान् है। प्राण बलवान् हैं, इसलिये इसके द्वारा उपासना करे।

परमात्माके नामजपसे ही सब दुःखोंका, पापोंका नाश होकर

परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। भगवान्‌के साथ प्रेम करनेमें जितनी सुगमता है, उतनी और किसीमें नहीं। सुगम रास्ता है, जिसको देखो उसीमें परमात्माको देख लो। हमारा परमात्माके साथ अनादि नित्य सम्बन्ध है, माता-पिताके साथ तो अंशांशी सम्बन्ध है, जबसे यह शरीर है तबसे है और जब शरीर शांत हो जायगा तो अंशांशी सम्बन्धका भी नाश हो जायगा। हमारा किसीके साथ सम्बन्ध होता है तो वह थोड़े समयतक रहता है। जैसे बालकका मातासे सहज स्नेह रहता है, वैसे परमात्मासे रहना चाहिये। भोजनका ध्यान करो, उसको खाया, पेट भर गया तो फिर खाना और ध्यान करना दोनों अच्छे नहीं लगते। इसी प्रकार सब विषय-भोग ऐसे ही हैं, परमात्मा एक ऐसा पदार्थ है, उसका ध्यान हर वक्त करते रहो, आनन्द बढ़ता ही रहेगा। विषयोंके ध्यानमें आनन्द नहीं आता। आनन्द आता तो ठहरता। संसारके विषय क्षण-क्षण बदलते रहते हैं। जीव एक चीजको छोड़कर दूसरी चीजमें क्यों जाता है? कारण उसमें आनन्द नहीं आता। जिसमें सुख प्रतीत नहीं हो उसको छोड़ता नहीं, यह भटकना है। भटकनेमें दुःख-ही-दुःख है। एक परमात्मा ही ऐसे हैं जिनमें सुख-ही-सुख है। वही सबसे बढ़कर लाभ है—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥ (गीता ६। २२)

परमात्माकी प्राप्तिरूप जिस लाभको प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता और परमात्मप्राप्तिरूप जिस अवस्थामें स्थित योगी बड़े दुःखसे भी चलायमान नहीं होता।

सबसे बढ़कर परमात्मा हैं, परमात्मासे बढ़कर कोई हो तो आप बतलायें, अतएव परमात्माका ध्यान करना चाहिये।

परमात्माके साथ ही यह बात है कि आप उनसे प्रेम करें तो बदलेमें वे भी आपसे प्रेम करते हैं। परमात्मा और महात्मा

ये दो ऐसे हैं जो प्रेम करनेवालोंके साथ प्रेम करते हैं। प्रेम करनेका कितना सुभीता है। जिसका परमात्मामें प्रेम हो जाय, उससे सब संसार डरता है। परमात्मासे प्रेम हो जाय तो परमात्माके राज्यकी सब चीजें उसकी हैं। यह बात समझमें आ जाय तो वह भगवान्‌को ही भजेगा।

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥ (गीता १५। १९)

हे भारत! जो ज्ञानी पुरुष मुझको इस प्रकार तत्त्वसे पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही भजता है।

इस हिसाबसे परमात्मासे प्रेम करना चाहिये। परमात्मा सबसे बढ़कर हैं। उनसे भी प्रेम नहीं निभा सको तो किससे निभाओगे। और तो सब स्वार्थके मित्र हैं।

स्वारथ मीत सकल जग माहीं। सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं॥
हेतुरहित जग जुग उपकारी। तुम तुम्हार सेवक असुरारी॥

एक नम्बरपर प्रेम परमात्मासे करे। उनसे बढ़कर तो कोई है नहीं, समान भी नहीं है। दो नम्बरपर महात्मा हैं। यह भी कहा जाता है कि परमात्मासे बढ़कर महात्मा हैं। भगवान्‌में प्रेम करनेसे परमात्मामें मिल जाता है और महात्मासे प्रेम करनेपर महात्मा भगवान्‌के दर्शन करा देते हैं, फलस्वरूप भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। कोई भगवान्‌का उद्देश्य रखकर महात्मासे प्रेम करे तो यह भगवान्‌से ही प्रेम है। दूसरोंसे प्रेम करे तो भगवान्‌के लिये करे। भगवान् और भगवान्‌के भक्तके सिवाय और किसीसे प्रेम होगा तो वह फँसाव ही है, हित नहीं। अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये दूसरेसे प्रेम करे तो फँसाव है, पतन है।

❑❑

प्रकृति नित्य है अथवा सान्त

प्रकृति अनादि नित्य है या अनादि सान्त है, पुरुषको अनादि नित्य मानते हैं। अतएव दोनों ही मार्ग हैं।

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति॥ (गीता ५।५)

ज्ञानयोगियोंद्वारा जो परमधाम प्राप्त किया जाता है, कर्मयोगियोंद्वारा भी वही प्राप्त किया जाता है। इसलिये जो पुरुष ज्ञानयोग और कर्मयोगको फलरूपमें एक देखता है, वही यथार्थ देखता है।

तर्क और विचारसे देखा जाय तो बुद्धिकी मान्यतासे वह विलक्षण है। अव्याकृत मायासे बुद्धि बनी हुई है, अतएव वास्तवमें जो बात है वह परमात्मा जानते हैं। जिस कालमें आप परमात्माको जान जायँगे, फलस्वरूप प्राप्ति हो जायगी। फिर जो कुछ बात है वह समझमें आ जायगी। प्राप्त होकर भी वह इस शरीरमें आकर वर्णन करे तो वाणीकी सामर्थ्य नहीं कि वर्णन कर सके। अव्याकृत मायाको अनिर्वचनीय कहेगा, क्योंकि किसी भी शब्दसे उसे कह नहीं सकते। आप मान्यता कर सकते हैं, एक मत मानकर चल सकते हैं। वह मान्यतासे बड़ी विलक्षण है। वह ऐसी चीज है जो प्राप्ति करा देती है। योगशास्त्र कहता है यह प्रकृति भुक्ति और मुक्ति देनेवाली है। प्रकृतिका कार्य तो विनाशशील है। तर्क है कि प्रकृति सांत है या नित्य है? गीता कहती है कि प्रकृति न तो सान्त है और न नित्य ही; गीतामें भगवान् मौन रहे। यदि प्रकृतिको सान्त बता देते तो योग और सांख्यको आदर नहीं मिलता, वेदान्तके पक्षका ही समर्थन होता, अतएव साफ शब्दोंमें निर्णय नहीं किया।

प्रवचन—दिनांक ८।४।१९४७, प्रातःकाल ७.३० बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

असलमें भगवान् और भगवत्प्राप्त पुरुष ही असली बात जानते हैं। मान्यता जितनी हैं वे मिथ्या हैं। मिथ्यासे सत्यकी प्राप्ति 'शाखाचन्द्र न्यायसे' होती है। साधन सब झूठे हैं, पर चन्द्रमाके दर्शन हो जाते हैं। इस न्यायसे सब साधन सच्चे हैं। शब्दोंके अर्थकी तरफ देखो तो बात झूठी है, पर प्रतीति होती है, इसलिये बात सच्ची है। परमात्मा और प्रकृतिकी बात पूरी नहीं आ सकती। जो स्वरूप आता है वह बुद्धिसे मिला हुआ स्वरूप आता है। जैसे दर्पणमें सारे आकाशका प्रतिबिम्ब नहीं आता, किसी एक हिस्सेका आता है, प्रतिबिम्ब भी दर्पणसे मिश्रित ही आता है। वैसे ही अव्याकृत मायाका स्वरूप भी बुद्धिसे मिला हुआ आता है। परमात्माका स्वरूप बुद्धिमें थोड़ा आता है, बुद्धि भी अव्याकृत मायाका एक अंश है और अव्याकृत माया परमात्माका एक अंश है। यह अंशांशी भाव भी जड़में होता है, चेतनमें नहीं। पर समझानेके लिये ऐसा कहा जाता है। भगवान् कहते हैं—

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन॥ (गीता ७। २६)

हे अर्जुन! पूर्वमें व्यतीत हुए और वर्तमानमें स्थित तथा आगे होनेवाले सब भूतोंको मैं जानता हूँ, परंतु मुझको कोई भी श्रद्धा-भक्तिरहित पुरुष नहीं जानता।

भगवान् कहते हैं कि मुझे कोई भूत नहीं जानते और यह भी कहते हैं कि जानते हैं। तर्कसे नहीं जान सकते, अनुभवसे जानते हैं। भगवान् कहते हैं—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥ (गीता ७। ३)

हजारों मनुष्योंमें कोई एक मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करता है

और उन यत्न करनेवाले योगियोंमें भी कोई एक मेरे परायण होकर मुझको तत्त्वसे अर्थात् यथार्थरूपसे जानता है।

जो परमात्माके तत्त्वको जानता है, वह प्रकृतिके तत्त्वको भी जानता है। यह जानकर भी वह उसको बतला नहीं सकता। जो प्राप्त होंगे वे ही जान सकेंगे। जैसे पृथ्वीके अन्दरवाले लोकमें रहनेवाले लोगोंको रात-दिन और सूर्यका तत्त्व नहीं समझा सकते, क्योंकि वहाँ न तो सूर्य है न रात और न दिन ही। वहाँके लोगोंको इस लोकमें लायें तो यह तत्त्व समझमें आ सकता है। वैसे ही ब्रह्म प्रापणीय विषय है, वह प्राप्त होनेपर ही समझा जा सकता है, प्राप्त होनेपर कहनेमें नहीं आता। महात्मा पुरुष भी ब्रह्मके विषयमें वही बात कहेंगे जो वेद-शास्त्रोंमें वर्णित है। उससे अधिक नहीं कह सकते।

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन। (गीता २।४५)

हे अर्जुन! वेद उपर्युक्त प्रकारसे तीनों गुणोंके कार्यरूप समस्त भोगों एवं उनके साधनोंका प्रतिपादन करनेवाले हैं।

दृश्यमात्र सत्, रज और तम तीन गुणोंका कार्य है, तीनों गुणोंसे अतीतको वेद भी नहीं कह सकते।

❑❑

भरतजीका रामजीमें प्रेम

बैठे देखि कुसासन जटामुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत स्त्रवत नयन जलजात॥

जब हनुमान्‌जी अयोध्या पहुँचे, तब भरतजी महाराज कुशासनपर बैठे हैं, शरीर दुर्बल है, राम-राम जप रहे हैं, नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह रही है। उसी तरहसे हमलोगोंको भगवान्‌से प्रेम करना चाहिये।

हनुमान्‌जी भगवान्‌के भक्त हैं, दूत हैं। वही दशा हमलोगोंकी होनी चाहिये, जैसी भरतकी थी। भरतका चरित्र—जीवन ऐसा है जिसे कहींसे पढ़ लो, उसमें प्रेमरस, करुणरस भरा है। कहीं प्रेम है तो कहीं करुणा है। अध्यात्मरामायण, तुलसीकृत रामायण, वाल्मीकीय रामायणमें उनकी कथा बड़ी रसमय-आनन्दमय आती है। उन सबको लक्ष्यमें रखकर साररूपमें आपकी सेवामें निवेदन किया जाता है। श्रीरामचन्द्रजी महाराज वनमें गये और वापस आये, उस समयकी कथा है।

श्रीरामचन्द्रजी महाराज वनमें गये, बड़े प्रेमसे गये। कैकेयीकी आज्ञासे सुमन्त रामको बुलाते हैं। पिताजीकी आज्ञा हो गयी तो जैसे थे वैसे ही चल दिये। यहाँ आकर देखा पिताजी बड़े दुःखी पड़े हैं। रामचन्द्रजीने बड़ी सरलतासे कहा—यह तो एक मामूली बात है, इसमें मेरा हित ही है। पिताजीकी आज्ञा और हे माता! इसमें तुम्हारी सम्मति, वनमें ऋषियोंके दर्शन और सबसे बढ़कर बात तो यह है कि मेरे प्यारे भाई भरतको राज्यगद्दी मिलेगी, ऐसा मौका पाकर भी मैं वनमें नहीं जाऊँ तो मैं मूर्खोंमें पहले नम्बरपर होऊँगा। अतएव मैं वन जाऊँगा। पिताकी आज्ञा मानकर राम वनमें

प्रवचन—दिनांक ७। ४। १९४७, प्रातःकाल ९ बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

चले गये। बादमें वसिष्ठजीने ननिहालसे भरतको बुलानेके लिये दूत भेजा, भरतजी चले आये। प्रथम पिताके दर्शन करने चाहिये, इस उद्देश्यसे वे कैकेयीके भवनमें गये, वहाँ पिताजीको नहीं देखा। कैकेयीको देखकर भरत उनके चरणोंमें गिर गये और पूछा हे माता! पिताजी कहाँ हैं? कैकेयीने कठोर हृदयसे कहा—भरत! तुम्हारे पिता उत्तम कर्म करनेवाले जिस लोकको जाते हैं, उस लोकको चले गये। यह सुनते ही भरत दुःखित हृदयसे विलाप करने लगे कि पिताजी! आप मुझे भैया रामको सौंपकर जाते तो अच्छा होता। फिर पूछा पिताजी क्या कहते हुए गये? कैकेयीने बताया—हा राम! हा लक्ष्मण! हा सीते! कहते हुए प्राण छोड़े। भरतने पूछा—क्या वे पिताजीकी मृत्युके समय पासमें नहीं थे? कैकेयीने कहा—नहीं थे। भरतने पूछा—कहाँ चले गये? कैकेयीने सारी बात सुना दी। भरत यह सुनकर पिताजीकी मृत्युके दुःखकी बात तो भूल गये और राम-वियोगकी बात सुनकर इतने व्याकुल हो गये जिसकी कोई सीमा नहीं। कैकेयीसे कहा—तू भगवान् रामको वनमें भेजकर मुझसे सुख चाहती है। अनेक खोटी-खरी बात सुनायी। तू कौन है? तू यहाँसे चली जा। रामको वनमें भेजनेसे पूर्व तेरी जीभमें कीड़े क्यों नहीं पड़ गये। वाल्मीकिरामायणमें यह कहा कि तुझे मैं मार डालता, पर राम मुझे मातृहत्यारा समझकर त्याग देंगे। यही समझकर मैं तुझे नहीं मार रहा हूँ और इसीलिये तू जीवित है। इतनेमें मन्थरा आ गयी। किसीने कह दिया कि इसीके कारण राम वनमें गये। शत्रुघ्नजी बिगड़े और उसे घसीटने लगे तथा मारनेके लिये तैयार हुए तो भरतने मना किया। जो और दासियाँ थीं, वे भी शत्रुघ्नके भयसे भाग गयीं। फिर भरतजी माताका तिरस्कार करके उसको छोड़कर माता कौशल्याके भवनमें गये। तुलसीकृत रामायणमें तो बतलाया है कि वे माता

कौशल्याके भवनमें गये और वाल्मीकिरामायणमें बतलाया है कि वे कौशल्याके भवनमें जानेको तैयार हुए और कौशल्याको भी भरतके आगमनकी बात मालूम हुई तो वह भी भरतसे मिलनेके लिये रवाना हुई और रास्तेमें ही भरतका मिलाप हो गया। भरत माताके चरणोंमें गिर गये। माताने बड़ा दुलार किया। भरतने विलाप किया और कहा—माता! भगवान्‌के वन जानेमें मेरी सम्मति हो तो मुझे अमुक-अमुक पाप लगे, ऐसे अनेक शपथें खायीं। माता भरतके भावको समझ गयीं। वह बोलीं—बेटा, मैं तेरे स्वभावको जानती हूँ। राम जब वनमें जाने लगे तो तुम्हारी प्रशंसा करते हुए कहा—माता! मुझसे बढ़कर मेरा भाई भरत तेरी सेवा करेगा। माताने आश्वासन दिया—भरत! इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं। जो तुमपर दोष लगायेगा वही इन सब दोषोंका भागी होगा। माताने कहा—इसमें किसको दोष देना है, यह सब प्रारब्धकी बात है, होनहार ही ऐसा था, तुम धीरज धारण करो। माता भरतको और भरत माताको धीरज देने लगे। फिर भरतने पिताजीकी ऊर्ध्व क्रिया की, श्राद्ध और तर्पण किया। बादमें सभामें सब मंत्री और सभासद इकट्ठे हुए, वसिष्ठजीने कहा—हे भरत! देवकी ऐसी ही इच्छा थी। अब पिताकी आज्ञा मानकर आज ही तुमको राजगद्दीपर बैठना चाहिये। इस बातका समर्थन सब महाजन और गुरुजनोंने किया। माता कौशल्याने भी बहुत आग्रहपूर्वक गद्दीपर बैठनेको कहा। भरतने सुनकर कहा—आपने जो कुछ कहा वह मेरे हितके लिये ही कहा है। माताका जो आग्रह है वह भी ठीक है। आप सब मेरी भलाईकी बात कहते हैं, पर इसमें मुझे मेरा भला नहीं दीखता। मैं लाचार हूँ, मैं आपकी इस आज्ञाको नहीं मान सकता। मैं अपराधी हूँ। भरतजी बहुत अनुनय-विनयपूर्वक कहते हैं कि मैं अपनी ओर देखता हूँ तो मैं नीच हूँ, अयोग्य हूँ। राजा बनकर मैं

आपको क्या लाभ पहुँचाऊँगा। राजा बनने लायक तो भगवान् राम हैं। वे ही राज्यके लायक हैं। अतएव हम सबको मिलकर उन्हें वनसे वापस लाना चाहिये। यह बात सुनकर सब बड़े प्रसन्न हुए, क्यों न हों, सब ऐसा ही चाहते थे। बादमें भरतने निश्चय किया कि भगवान् रामके दर्शनके लिये चलना चाहिये और बड़े अनुनय-विनयके साथ उनको वापस लाना चाहिये। सबको यह बड़ा अच्छा लगा। प्रातःकाल सब चलने लगे। भरतजी पैदल जाने लगे तो माता कौशल्याके पास जाकर गुरुजन कहने लगे कि भरत यदि पैदल चलेंगे तो सब लोग पैदल चलेंगे और विलम्ब होगा। अतएव आप भरतसे कह दें ताकि वे पालकीपर सवार हो जायँ। माता अपनी पालकी भरतके पास ले गयीं और कहा—मेरी आज्ञा है तुम सवारीपर बैठो। भरतने कहा—माता! जब भगवान् राम पैदल गये तो मेरा कर्तव्य है कि मैं सिरके बल जाऊँ। आप दुखिया हैं, अतएव मैं आपकी आज्ञा मान लेता हूँ। सब लोग शृंगवेरपुर पहुँचे। गुहने विचार किया कि भरत इतनी बड़ी सेना लेकर क्या रामको मारनेके लिये जा रहे हैं? उसने अपनी जातिवालोंको बुलाकर सावधान किया कि मैं भरतकी नीयतकी परीक्षा लेने जाता हूँ, यदि उसकी नीयत अच्छी होगी तो सेनासहित गंगा पार कर देंगे अन्यथा तुम सब लोग तैयार रहना, उनको गंगामें डुबो देंगे। गुह भरतके पास भेंट लेकर गया। सुमन्तने भरतसे कहा—यहाँका राजा गुह आपके पास भेंट लेकर आया है। भरतने कहा—तुम भेंट लेकर आये हो, पर मैं राजा नहीं हूँ। आपके सत्कार और सन्तोषके लिये मैं भेंट छू लेता हूँ। महाराज श्रीराम ही भेंटके अधिकारी हैं। गुहने पूछा—महाराज! आप किस उद्देश्यसे रामसे मिलनेके लिये जाते हैं? भरतने कहा क्या कहूँ? मैं महाराजको वनसे वापस ले आनेके लिये जा रहा हूँ। महाराजके वन जानेमें मैं

ही कारण हूँ। मैं पैदा नहीं होता तो यह सब क्यों होता। हे गुह! मैं सुनता हूँ कि महाराज रामने एक रात्रि यहाँ वृक्षके नीचे निवास किया था, वह वृक्ष मुझे दिखाओ। गुहने वह पेड़ दिखाया, वहाँ सीताके वस्त्रके तारे दीखे तो भरत विलाप करने लगे और कहा—जो सीता महलोंमें रहती थी उसको यहाँ निवास करना पड़ा। जिस सीताके दर्शन सूर्य, चन्द्रमा और वायुको भी होना मुश्किल था, उस सीताको यहाँ वनके मनुष्य, पशु देखेंगे।

वाल्मीकिरामायणमें तो यह बात आती है कि गुहने भरतसे प्रत्यक्ष पूछा कि आप सेनासहित आये हैं, आपके मनमें खराब नीयत तो नहीं है? यह सुनकर भरतने विचार किया कि मैं कैकेयीका पुत्र हूँ, अतएव मेरे विषयमें जो कल्पना करें वह ठीक ही है। वे अनेक प्रकारसे विलाप करने लगे।

भरतने गुहसे पूछा—भगवान् रामने यहाँ किस प्रकार रात बितायी? गुहने सब बात कह दी कि रात हुई तो महाराजके लिये लक्ष्मणने शय्या बना दी और गंगाजल ले आये। रात्रिभर बैठकर लक्ष्मणने पहरा दिया। मैंने लक्ष्मणसे कहा कि आप सो जायँ, मैं पहरा दूँगा तो लक्ष्मण बोले—मैं रघुनाथजीका सेवक हूँ, मैं ही पहरा दूँगा। तब मैं और लक्ष्मण दोनोंने रातभर पहरा दिया। रातभर भगवान्‌की कथा कहते-सुनते रात बितायी। प्रातःकाल महाराज सीता-लक्ष्मणसमेत गंगासे पार चले गये। यह सब सुनकर भरतने कहा—मेरे ही कारण भगवान्‌को यह सब कष्ट उठाना पड़ा।

तत्पश्चात् भरत भरद्वाजके आश्रमपर गये। भरद्वाजने उनका आतिथ्य-सत्कार किया और रातभर निवास करनेके लिये कहा। भरद्वाजने पूछा—भरत! तुम किसलिये जा रहे हो? भरतने कहा—महाराज, मैं नीच हूँ। आप मेरे विषयमें ऐसा क्यों न पूछें? भरद्वाजने कहा—मैं तपोबलसे जानता हूँ कि तुम रामको वनसे

वापस लानेके लिये जा रहे हो। मैंने पूर्वमें बहुत शुभ कर्म किये, जिसके फलस्वरूप तुम्हारे दर्शन हुए। भगवान् रामने भी एक रात्रि यहाँ निवास किया था और तुम्हारे प्रेमकी बहुत प्रशंसा करते थे, अतएव आप भी एक रात्रि यहाँ निवास करें। भरतने मुनिके प्रेम और आग्रहको देखकर एक रात्रि वहाँ निवास किया। भरद्वाजजीने सब ऋद्धि-सिद्धियोंको आज्ञा दी कि भरतका आतिथ्य-सत्कार करो। बड़ी ही सुन्दर तैयारी हुई। गद्दी तैयार की गयी, सिंहासन बनाया गया, किन्तु भरत गद्दी और सिंहासनपर नहीं बैठे। वे भगवान् रामको गद्दीके योग्य समझकर और अपनेको मन्त्रीके स्थानपर समझकर उसके चँवर-छत्र करने लगे। रातभर इसी प्रकार बितायी। प्रातःकाल भरत रवाना हुए, यह वाल्मीकिरामायणकी कथा है। तुलसीकृतमें आया है—महाराज भरत जा रहे हैं, लक्ष्मणने वृक्षपर चढ़कर देखा कि सेनासहित भरत आ रहे हैं। लक्ष्मणने भगवान् रामसे कहा—राजमदको पाकर भरतने सेनासहित हमलोगोंपर चढ़ाई की है। लक्ष्मणने वीररसमें आकर कह दिया। महाराज रामने कहा—हे लक्ष्मण! भरतके योग्य यह बात नहीं है। भरतरूपी हंस अवगुणरूपी जलका त्याग करके गुणरूपी दूध ही ग्रहण करता है। उस अवधका राज्य तो क्या, विधि, हरि, हरका राज्य भी मिल जाय, तब भी भरतको अभिमान नहीं हो सकता। भरतके समान मेरा प्रिय कोई नहीं है। भरत बड़ा ही प्रेमी है, वह मुझे वापस ले जानेके लिये आया है, मेरे ऊपर चढ़ाई करनेके लिये नहीं। तुमको भरतके विषयमें शंका नहीं करनी चाहिये।

भरतजी आये, भगवान् नहीं दीखे तो मन-ही-मन यह विचार आया कि कहीं भगवान् इस वनको छोड़कर दूसरे वनमें तो नहीं चले गये। मैं कैकेयीका पुत्र हूँ, फिर भरतजी विचार करते हैं कि भगवान् बड़े दयालु हैं। माताके अवगुणोंकी तरफ देखते तो पाँव

पीछे पड़ते हैं, अपने अवगुणोंको याद करते तो पैर रुकते थे और जब भगवान्‌के विरदको याद करते तो पाँव आगे बढ़ते। आगे चले तो भगवान् रामके चरणचिह्न मिले। धूलिको उठाकर मस्तकसे, हृदयसे लगाना शुरू किया। भरतकी प्रेममयी दशाको देखकर देवतालोग पुष्पवर्षा करने लगे। जड़ चेतन हो गये और चेतन जड़की भाँति हो गये। इतना आनन्द हुआ जिसका ठिकाना नहीं। जो करुणारस था वह प्रेमरसमें परिणत हो गया, आगे गये। देखा, महाराज मुनिगणकी मण्डलीमें एक वृक्षके नीचे वेदीपर बैठे हुए हैं और कथा हो रही है। बारम्बार नमस्कार करते हुए भरतजी बड़े आदर और प्रेमके साथ रघुनाथजीके निकट पहुँच गये। जमीनपर साष्टांग प्रणाम किया। भगवान्‌के चरणोंको वहीं समझकर प्रणाम किया। भरतका शरीर कृश था, बोलीसे लक्ष्मणने उनको पहचाना और महाराजसे कहा कि आपको भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। महाराज उठे और प्रेमके कारण उन्हें होश नहीं रहा, बड़े आतुर होकर भरतसे मिले। उस समय भगवान्‌ने बलात् भरतको उठाकर गलेसे लगा लिया। भरतसे पूछा—भरत! किसलिये आये हो? भरतने जवाब दिया—महाराज! मैं अकेला ही नहीं हूँ। माताएँ और गुरुजन भी आये हैं, यह सुनते ही भगवान् सीताके पास शत्रुघ्नको छोड़कर उनसे मिलनेके लिये गये।

फिर राम-लक्ष्मण माताओंके चरणोंमें गिरे और मुनियोंको प्रणाम किया, सबसे मिले। भगवान्‌ने सुना कि दशरथजी मेरे वियोगमें मर गये तो रामने बड़ा विलाप किया। सारा दिन शोकमें बिताया। पिताजीकी सारी क्रिया की, इंगुदीके फलके पिंड दिये, तर्पण किया और भगवान्‌ने उस दिन उपवास किया। दूसरे दिन सभा इकट्ठी हुई और बात पूछी तो सबने कहा—महाराज! हम आपको वापस लेनेके लिये आये हैं। वाल्मीकिरामायणमें आया

है कि भरतने कहा कि महाराज! पिताने कामके वशमें होकर जो आज्ञा दी है, आपको उसको नहीं माननी चाहिये। भगवान्ने जवाब दिया—भरत! पिताके विषयमें ऐसा नहीं कहना चाहिये। पिताजीने धर्मके पालनके लिये अपने प्राणोंतकका त्याग कर दिया, उन ऐसे धर्मात्मा राजाके ऊपर दोष नहीं लगाना चाहिये। भरत लज्जित हो गये। फिर भरतने कहा—ठीक है, पिताजीने जो आपको और मुझे दिया है उसको प्रेमके नाते, भाई-भाईके नाते आपसमें उलट-फेर कर लें अर्थात् आप राजगद्दीपर बैठें और मैं वनमें जाऊँगा। रामने कहा—ऐसा कैसे हो सकता है। माता कैकेयीके ये विशेष वचन हैं कि राम वनमें जाये और भरत राजगद्दीपर बैठे। फिर भरतने कहा—मैं भी आपके साथ वनमें चलता हूँ। महाराजने मना किया।

तुलसीकृत रामायणमें आया है कि भरतजीने राजा जनकसे भी कहा कि जिस प्रकारसे राम वनसे वापस लौटें, वह उपाय आप करें, ताकि भगवान् राम ही राजगद्दीपर बैठें। जनकने कहा—मैं ब्रह्मका विचार कर सकता हूँ, राजनीतिपर विचार कर सकता हूँ, किन्तु भरत और रामके प्रेममें कुछ नहीं कह सकता। अन्तमें भरतने अनशन करनेका विचार किया और कुशाका आसन बिछाकर वहीं बैठ गये। महाराज रामने कहा—हे भरत तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिये। वसिष्ठजीसे कहा—आप भरतको समझा दें कि इस प्रकारका हठ करना अच्छा नहीं है। वसिष्ठजीने भरतसे कहा—भरत! महाराजकी जो आज्ञा है, वही माननी चाहिये। अपने जीवनकी रक्षाके लिये अवधिपर्यन्त महाराजसे कोई सहारा माँग लो। तब भरतने महाराजकी चरणपादुका माँग ली और कहा—महाराज! आपकी चरणपादुकाएँ आपकी अनुपस्थितिमें राज्य करेंगी। महाराजने स्वीकार कर लिया और चरणपादुका भरतको दे

दी। भरतने पहले उनको नमस्कार कर मस्तकपर धारण किया और महाराजसे कहा—महाराज! चौदह वर्ष बीतनेके बाद पन्द्रहवें वर्षके पहले दिन यदि आप नहीं आये तो मैं आगमें प्रवेश करके प्राण त्याग दूँगा। इसे भी महाराजने स्वीकार किया।

भरत रोते हुए वापस आये और नन्दीग्राममें महाराजकी चरणपादुकाओंको सिंहासनपर स्थापित करके अपनेको राज्यका मन्त्री समझकर राज्य करना प्रारम्भ किया। शत्रुघ्नजी भी भरतके साथ थे। भरतका भाव था कि जो कुछ हो रहा है महाराजकी चरणपादुका ही कर रही है।

उधर महाराज राम वनमें घूमते हुए ऋषियोंके आश्रमपर जाकर इस तरह समय बिताने लगे। गोदावरी नदीके तटपर पंचवटीमें ठहरे। वहाँपर मारीच कपटमृग बनकर आया और रावणद्वारा सीताका हरण हुआ। अन्तमें महाराजने लंकापर चढ़ाई करके रावणको मारकर सीताको छुड़ाया। चौदह वर्षकी अवधि समाप्त होनेको आयी थी। उस समय विभीषणने महाराजसे आग्रह किया कि महाराज! जो कुछ राज्य, कोष है सब आपका ही है और मैं खुद भी आपका ही हूँ। मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप कुछ समयके लिये यहाँपर निवास करें। तब महाराजने विभीषणको भरतकी प्रतिज्ञा कह सुनायी और कहा—भैया! तुम अब ऐसा उपाय करो जिससे मैं शीघ्र ही अयोध्या पहुँच जाऊँ। समयपर नहीं पहुँचा तो मैं अपने प्राणप्यारे भाई भरतसे हाथ धो बैठूँगा। तब विभीषणने पुष्पक विमान मँगवाया। भगवान्, सीता, लक्ष्मण, हनुमान्, विभीषण और सारे वानर उसपर सवार हुए और विमान चला। रास्तेमें महाराजने सीताको सब बातें कहीं, समुद्र दिखाया, पुल दिखाया, किष्किन्धा दिखायी। बादमें भरद्वाजके आश्रमपर पहुँचे, वहाँसे हनुमान्‌को भरतका भाव जाननेके लिये

आगे भेजा और कहा—यदि भरतको हमारी आवश्यकता है तो हम चलते हैं और यदि राज-काजमें लगकर उसे हमारी चाह नहीं हो तो वही अवधका राज्य करे और मैं यहीं रहूँगा, तुम पता करके उत्तर दो। हनुमान्‌जी जा रहे हैं। उधर भरतकी दशा बेदशा हो रही है। भरतजीने देखा—

रहा एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा॥

अभीतक भगवान् आये नहीं और न आस-पासवालेने ही कोई खबर दी।

कारन कवन नाथ नहिं आयउ। जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ॥

मुझे कुटिल जानकर प्रभुने मुझे छोड़ दिया। हे लक्ष्मण! तुम धन्य हो! तुम्हारा भाव, प्रेम सराहने लायक है। तुम्हारा प्रेम इतना है कि महाराज तुमको अपने साथ ले गये। मैं कुटिल, नीच तथा पापी हूँ, इसको भगवान् जान गये और इसीलिये मुझे साथ नहीं ले गये। भरत विलाप करने लगे। आप पतितपावन हैं, आपका स्वभाव बड़ा कोमल है, आप दासोंके दोष नहीं देखते, मुझे विश्वास है कि आप अवश्य मिलेंगे, यदि आप नहीं मिले तो मेरे प्राण नहीं रहेंगे। यदि प्राण नहीं निकले तो मैं अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा।

बीतें अवधि रहहिं जों प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥

अर्थात् प्राण हमारे निकलेंगे नहीं, भगवान् जरूर आयेंगे—

मोरे जियँ भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सकुन सुभ होई॥

मेरे मनमें यही दृढ़ विश्वास है कि भगवान् मिलेंगे, शकुन भी अच्छे हो रहे हैं। यही दृढ़ विश्वास है कि—

जन अवगुन प्रभु देख न काऊ। दीनबन्धु अति मृदुल सुभाऊ॥

मैं दीन हूँ और वे दीनबन्धु हैं, उनका स्वभाव बड़ा कोमल है, यह भाव है। भगवान् यदि नहीं मिले तो मेरे देहमें प्राण नहीं रहेंगे। अबतक तो अवधि मेरे प्राणोंकी रक्षा कर रही थी। किसी

कारणवश भगवान् नहीं आये और मेरे प्राण नहीं निकले तथा मैं हठपूर्वक अपना प्राण त्याग करूँ तो यह आत्महत्या है। भरत बड़े ही व्याकुल हो गये।

राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत॥

तब हनुमान्जी ब्राह्मणका रूप धारण करके आ गये। जैसे डूबते हुएको नौका मिल जाय, वही दशा भरतकी थी। भरतजी कुशासनपर बैठे हैं, जटाका मुकुट धारण किये हुए हैं। राम-राम, रघुपति जप रहे हैं, शरीर कृश है। उस समय हनुमान्जीने जाकर कहा—जिसके नामकी रटन आप दिन-रात लगा रहे हैं, वे ही भगवान् राम-सीता और लक्ष्मणसमेत आ गये हैं। जब भरतने यह सुना तो बड़े प्रसन्न हुए और हनुमान्से कहा—

को तुम तात कहाँ ते आए। मोहि परम प्रिय बचन सुनाए॥

हे तात! तुम कौन हो? कहाँसे आये हो? मुझे तुमने परम प्रिय वचन सुनाये। यह सुनकर हनुमान्जी बड़े प्रेमसे कहते हैं—

मारुत सुत मैं कपि हनुमाना। नामु मोर सुनु कृपानिधाना॥

यह कहा तो भरतजी बड़े प्रसन्न हुए और अपने हृदयसे उनको लगा लिया। कहा—

एहि संदेस सरिस जग माहीं। करि बिचार देखेउँ कछु नाहीं॥
नाहिन तात उरिन मैं तोही। अब प्रभु चरित सुनावहु मोही॥

हे तात! मैं तुम्हारे ऋणसे कभी छूटनेका नहीं। अब रघुनाथजीके चरित्र सुनाओ। हनुमान्जीने देखा कि जिनकी साक्षात् रघुनाथजी महाराज प्रशंसा करते हैं, उनको मैं आज प्रत्यक्ष देख रहा हूँ।

हनुमान्जी महाराज रामके पास गये और सब बातें कह सुनायीं। महाराज अयोध्याकी ओर आये। रास्तेमें सरयूकी प्रशंसा

करते हैं। अयोध्या और अयोध्यावासियोंकी प्रशंसा करते हैं। भगवान्‌ने कहा—अयोध्यावासी मुझे जितने प्रिय हैं, उतने वैकुण्ठवासी भी प्रिय नहीं हैं। यह रहस्यकी बात है—

अवध सरिस प्रिय मोहि न सोऊ । यह रहस्य जानहि कोउ कोऊ॥

रहस्य यह है कि मैं केवल एक प्रेम देखता हूँ—

'जानउँ एक प्रेम कर नाता'

इस समय इनका जैसा प्रेमका नाता है वैसा वैकुण्ठवासियोंका नहीं है। भगवान् राम आ रहे हैं, यह खबर अयोध्यावासियोंको मालूम हुई तो बालक, वृद्ध, युवा, स्त्री सब-के-सब भगवान्‌के प्रेममें उछलकर मिलनेके लिये आये। मकानोंकी अट्टालिकाओंपर चढ़कर युवतियाँ मांगलिक द्रव्य फेंक रही हैं। सब अयोध्यावासी भगवान्‌के प्रेमके लिये आतुर हैं।

महाराज भरत और शत्रुघ्नसे मिले। उस समयके प्रेमका वर्णन अद्‌भुत है। भगवान् सबसे मिले, क्योंकि सब प्रेममें आतुर हैं।

अमित रूप प्रगटे तेहि काला । जथाजोग मिले सबहि कृपाला॥
छन महिं सबहि मिले भगवाना । उमा मरम यह काहुँ न जाना॥

अनेक रूप धारण करके भगवान् सबसे यथायोग्य मिले। शंकरजी कहते हैं—हे उमा! इस मर्मको कोई नहीं जानता। जिससे भगवान् मिलते हैं वह आश्चर्य और प्रेममें इतना मग्न हो जाता है कि उसको पता नहीं चलता कि भगवान् मेरे सिवाय किसी औरसे भी मिल रहे हैं।

भगवान् सब माताओंसे मिले। अवधमें उत्सव मनाया गया। सब भाई सेवा करने लगे, चँवर-छत्र करने लगे। रामचन्द्रजी सिंहासनपर बैठे। नगरमें महान् उत्सव मनाया गया। फिर राजतिलक हुआ।

❑❑

समर्पण

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन्। (गीता ५। ९)

सब इन्द्रियाँ अपने-अपने अर्थोंमें बरत रही हैं—इस प्रकार समझकर निःसन्देह ऐसा माने कि मैं कुछ भी नहीं करता हूँ।

प्रश्न—भगवान् करवा रहे हैं यह मान लें तो?

उत्तर—यह भी ठीक है।

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा। (गीता ३। ३०)

मुझ अन्तर्यामी परमात्मामें लगे हुए चित्तद्वारा सम्पूर्ण कर्मोंको मुझमें अर्पण कर।

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः। (गीता १८। ५७)

सब कर्मोंको मनसे मुझमें अर्पण कर। भगवान् कहते हैं, जो होनेवाली क्रिया है उसको चित्तसे मेरे अर्पण कर और तू स्वयं भी मेरे परायण हो जा। बुद्धि और मन मेरेमें लगा दे।

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि। (गीता १८। ५८)

उपर्युक्त प्रकारसे मुझमें चित्तवाला होकर तू मेरी कृपासे समस्त संकटोंको अनायास ही पार कर जायगा।

भगवान्‌की कठपुतली बन जाय, जैसे वे नचायें वैसे नाचे। कठपुतलीकी क्रिया तथा वह खुद और हार-जीत सब सूत्रधारके हाथमें है। उसी प्रकार अपने-आपको, अपनी क्रिया और हार-जीत सबको भगवान्‌के अर्पण कर दे।

प्रश्न—भगवान्‌की कठपुतली बननेपर भगवान् करवा रहे हैं यह बात कैसे घटाये। कठपुतली बननेमें किस प्रकार ध्यान करे?

उत्तर—भगवान् सब जगह स्थित होते हुए अपने हृदयमें विशेषरूपसे विराजमान हैं—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥ (गीता १८। ६१)

हे अर्जुन! शरीररूप यन्त्रमें आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियोंको अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी मायासे उनके कर्मोंके अनुसार भ्रमण

प्रवचन—दिनांक ९। ४। १९४७, प्रातःकाल ६.१५ बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

कराता हुआ सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित है। इस प्रकार भगवान्‌के अर्पण होना या कठपुतली बनना एक बात है।

ईश्वर सबके हृदयमें बैठा हुआ क्रिया करवा रहा है। शरीररूपी यन्त्रमें भगवान् स्थित हैं और हमसे काम करवा रहे हैं। यहाँ इन्जीनियर भगवान् हैं, प्रकृति इन्जन है, शरीर घाणी है, इसपर वासनाका पट्टा चढ़ा हुआ है। अपने तो निष्काम रहे, इन्जीनियरकी मर्जी हो तो उसके पट्टा चढ़ा दे। अपने तो द्रष्टा साक्षी बना रहे। दुर्योधनका कथन है—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
केनापि देवेन हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि॥

(महाभारत)

धर्म क्या है? मुझे इस विषयमें ज्ञान होते हुए भी धर्मके प्रति मेरी प्रवृत्ति नहीं होती, एवं अधर्म क्या है वह भी मैं जानता हूँ, किन्तु उससे मैं निवृत्त नहीं हो पाता; मेरे हृदयमें स्थित होकर कोई देव मुझे जैसे करनेको नियुक्त करता है, वैसे ही मैं करता हूँ।

अपने तो पूर्वका आधा छोड़ दे और अन्तका आधा श्लोक ले ले यह अच्छा है। परमात्मा सबके हृदयमें विराजमान हैं, वे जैसा करवायें वैसा आप करें।

यह परीक्षा है। इन्द्रियाँ, मन, बुद्धिकी बागडोर परमात्माके हाथमें है तो उनकी इच्छाके अनुसार काम होगा। यदि कामके हाथमें बागडोर होगी तो वह काम अपनी इच्छासे हो रहा है। अर्जुनने पूछा—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥ (गीता ३। ३६)

हे कृष्ण! तो फिर यह मनुष्य स्वयं न चाहता हुआ भी बलात् लगाये हुएकी भाँति किससे प्रेरित होकर पापका आचरण करता है? भगवान् उत्तर देते हैं—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥ (गीता ३। ३७)

रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है, यह बहुत खानेवाला अर्थात् भोगोंसे कभी न अघानेवाला और बड़ा पापी है, इसको ही तू इस विषयमें वैरी जान।

प्रायः लोगोंकी बागडोर कामके हाथमें रहती है, वही डोर भगवान्के हाथमें दे दे तो सब काम भगवान्की इच्छाके अनुसार होगा। उससे पापाचार नहीं होगा। न्याय है तो भगवान् करवा रहे हैं और अन्याय है तो काम करवा रहा है। यह परीक्षा है। इतनी बात है कि राग-द्वेष अन्तःकरणमें नहीं हो। राग-द्वेषरहित काम हो तो धोखा नहीं है। वास्तवमें भगवान् करवा रहे हैं यह भावना करना बहुत अच्छा है। पर इतनी बात ध्यानमें रखे कि '**जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः**' हमारेमें नहीं आये। अपना उद्देश्य है कि राग-द्वेषपूर्वक काम नहीं हो। यदि आसक्तिके कारण काम हो जाय तो यह खतरेकी चीज है। फिर भी नहीं छूटता, क्योंकि यह अनादिकालका स्वभाव है। इसके लिये भगवान्की स्तुति और प्रार्थना करे। ज्ञानके मार्गमें अपना शरीर प्रकृति और गुणोंके अर्पण कर दे और भक्तिके मार्गमें भगवान्के समर्पण कर दे। कर्मयोगमें—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥ (गीता २।६४)

अपने अधीन किये हुए अन्तःकरणवाला साधक अपने वशमें की हुई राग-द्वेषसे रहित इन्द्रियोंद्वारा विषयोंमें विचरण करता हुआ अन्तःकरणकी प्रसन्नताको प्राप्त होता है। भक्तियोग, ज्ञानयोग और कर्मयोग सबमें राग-द्वेषका अभाव बताया है—

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥
इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥

(गीता ३।३३-३४)

सभी प्राणी प्रकृतिको प्राप्त होते हैं अर्थात् अपने स्वभावके

परवश हुए कर्म करते हैं। ज्ञानवान् भी अपनी प्रकृतिके अनुसार चेष्टा करता है। फिर इसमें किसीका हठ क्या करेगा। इन्द्रिय-इन्द्रियके अर्थमें अर्थात् प्रत्येक इन्द्रियके विषयमें राग और द्वेष छिपे हुए स्थित हैं। मनुष्यको उन दोनोंके वशमें नहीं होना चाहिये, क्योंकि वे दोनों ही इसके कल्याणमार्गमें विघ्न करनेवाले महान् शत्रु हैं। क्रिया तो होगी पर राग-द्वेषपूर्वक नहीं होगी।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥ (गीता ५।१०)

जो पुरुष सब कर्मोंको परमात्मामें अर्पण करके और आसक्तिको त्यागकर कर्म करता है, वह पुरुष जलसे कमलके पत्तेकी भाँति पापसे लिप्त नहीं होता।

परमात्मामें सब कर्म छोड़ दे। आसक्तिका त्याग कर दे। आसक्तिके त्यागसे द्वेषका त्याग स्वतः ही हो जाता है। कर्तृत्व-अभिमानका त्याग कर दे या सब कर्म प्रकृतिके अर्पण कर दे। आखिरमें जाकर सबका सिद्धान्त एक हो जाता है।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥ (गीता २।३८)

जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुःखको समान समझकर, उसके बाद युद्धके लिये तैयार हो जा; इस प्रकार युद्ध करनेसे तू पापको नहीं प्राप्त होगा।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥
योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

(गीता २।४७-४८)

तेरा कर्म करनेमें ही अधिकार है, उसके फलोंमें कभी नहीं। इसलिये तू कर्मोंके फलका हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करनेमें भी आसक्ति न हो। हे धनंजय! तू आसक्तिको त्यागकर तथा

सिद्धि और असिद्धिमें समान बुद्धिवाला होकर योगमें स्थित हुआ कर्तव्यकर्मोंको कर, समत्व ही योग कहलाता है।

आसक्तिका त्याग सबमें आ जायगा। हर प्रकारसे समताकी बड़ी आवश्यकता है। साधनकालमें समताका भाव रहना चाहिये। सिद्धमें तो समता होती ही है। परमात्मा सम है।

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः॥ (गीता ५।१९)

जिसका मन समभावमें स्थित है, उनके द्वारा इस जीवित अवस्थामें ही सम्पूर्ण संसार जीत लिया गया है, क्योंकि सच्चिदानन्दघन परमात्मा निर्दोष और सम है, इससे वे सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही स्थित हैं।

समताके द्वारा ब्रह्ममें स्थितिकी बड़ी आवश्यकता है। सबमें वैराग्य कहो या राग-द्वेषका त्याग कह दो, एक ही बात है।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥ (गीता २।५७)

जो पुरुष स्नेहरहित हुआ उस-उस शुभ और अशुभ वस्तुको प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है उसकी बुद्धि स्थिर है। कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग सबमें समताकी बात आती है। समता आनेसे सब दोष चले जाते हैं।

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा॥ (गीता ६।२३)

जो दुःखरूप संसारके संयोगसे रहित है तथा जिसका नाम योग है, उसको जानना चाहिये। वह योग न उकताये हुए अर्थात् धैर्य और उत्साहयुक्त चित्तसे निश्चयपूर्वक करना कर्तव्य है। यहाँ समताका फल बतलाया है—'**दुःखसंयोगवियोगम्**' यानि दुःखके संयोगसे मुक्त हो जाता है।

❑❑

भाव-सुधारकी आवश्यकता

साधनकाल, व्यवहारकाल और शयनकाल—तीनोंका सुधार करना चाहिये। सोनेसे पूर्व गीता, रामायणका पाठ करते हुए सोये तो स्वप्न अच्छा आये। साधनकालके समयमें गीता आदिका पाठ करे तो खूब प्रेमपूर्वक करे, भगवान्‌को याद करते हुए करे। भगवान्‌के एक भक्तकी कथा याद आ गयी। वह बहुत प्रसन्न होकर, मुग्ध होकर पाठ किया करता था। आँखोंमें आँसुओंकी धारा बह रही है, उससे पूछा कि तुम्हें इतनी प्रसन्नता क्यों है? उसने कहा—मुझे भगवान् और अर्जुन प्रत्यक्ष दीख रहे हैं। उससे पूछा कि तुम पाठ तो अशुद्ध करते हो फिर यह कैसे? तुम तो दम्भ करते हो। वह व्यक्ति गौरांग महाप्रभुका शिष्य था, उस दिनसे उसका भजन, ध्यान, पाठमें मन नहीं लगने लगा तो एक दिन गौरांग महाप्रभुके पास जाकर उसने इसका कारण पूछा। महाप्रभुने पूछा—तुमने किसी भक्तकी निन्दा तो नहीं की? वह बोला—महाराज, भक्तकी निन्दा तो नहीं की, पर एक दम्भीकी की थी। महाप्रभुने कहा—वह दम्भी नहीं है वह तो भगवान्‌का बड़ा भक्त है। उसने कहा—मुझे तो विश्वास नहीं पर आप कहते हैं तो मान लेता हूँ। महाप्रभुने कहा—तुम उसकी चरणधूलिको उठा लो। ऐसा ही किया तो उसको साक्षात् भगवान्‌के दर्शन हो गये। वह उसके चरणोंमें गिर गया।

इस प्रकार साधनका सुधार करे, खूब भाव बढ़ाये। अपना यह भाव अच्छा है कि भगवान्‌का अवतार होगा। हमें तो अपना भाव ही अच्छा रखना चाहिये।

परलोक, ईश्वर और शास्त्रमें श्रद्धा बहुत ही मूल्यवान् है।

प्रवचन—दिनांक १०।४।१९४७, सायंकाल ६.१५ बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

डॉक्टरकी हर एक बातमें विश्वास करते हैं, फिर ऋषियोंकी बातमें विश्वास क्यों न करें? तुलसीदासजीकी बातमें क्यों न विश्वास करें? वे तो महात्मा पुरुष, अनुभवी पुरुष थे। उनकी बातें युक्तिसंगत हैं।

तुलसीदासजीकी वाणीमें विनयके शब्द बहुत हैं। तुलसीदासजीकी रामायण, विनयपत्रिकाकी छाप प्रत्यक्षमें कितने लोगोंपर पड़ रही है। वे महापुरुष थे। ऐसे हर एक आदमीको चेष्टा करनी चाहिये कि हम भी वैसे ही बनें। महाराज युधिष्ठिरपर कितनी विपत्ति पड़ी तो भी उन्होंने धर्मका त्याग नहीं किया। साक्षात् धर्मराज ही कुत्तेके रूपमें प्रकट हो गये। युधिष्ठिरका यह भाव नहीं था कि धर्मराज प्रकट हो जायँ। युधिष्ठिरका जीवन बहुत सादगीका था। वे कभी नहीं कहते कि मेरा यह प्रभाव है। युधिष्ठिर जहाँ-जहाँ जाते थे वहाँ-वहाँ उनका चमत्कार मालूम पड़ता था, परन्तु युधिष्ठिर ऐसा नहीं मानते थे। यह साधुताका व्यवहार है।

राजा युधिष्ठिर बड़े सरल और धर्मात्मा थे। उन्होंने अपनी तरफसे कोई चमत्कार या विशेषता कभी नहीं कही। भगवान् कृष्णने तो कई जगह चमत्कार दिखलाये। भगवान् रामने बहुत कम जगह अपने चमत्कारकी बात दिखलायी।

धनुष चढ़ानेके समय, परशुरामजीके सामने, लंकामें ब्रह्मादि देवताओंने स्तुति की, दशरथजीने, शिवजीने स्तुति की और भगवान् राम पूर्णब्रह्म परमात्मा हैं यह कहा।

भगवान् श्रीकृष्णने बालकरूपमें अपना प्रभाव विशेषरूपसे दिखलाया। ब्रह्माजी बछड़े चुराकर ले गये तो आप एक ही अनेक रूपवाले हो गये।

❑❑

सार बातें

प्रश्न—महात्माओंका स्वभाव होता है कि वे अपने अनुयायियोंका परित्याग नहीं करते, ऐसा सुना है। साधक महात्मामें भी यह बात आ जाती है कि वे भी साथीका त्याग नहीं करते। शंका यह है कि भगवान्‌को प्राप्त भक्तके लिये '**मैत्रः करुणः**' का भाव विशेष रूपसे कहा गया है। वे उनके लिये विशेष चेष्टा करते हैं यह तो समझमें आती है और जो ज्ञानमार्गद्वारा सिद्ध हो गये हैं उनके संग करनेवालोंकी क्या स्थिति होती है? महापुरुष तो वापस आते नहीं फिर संग करनेवालोंका उद्धार कैसे हो? महात्मा पुरुष हैं, ज्ञानमार्गसे सिद्धिको प्राप्त हुए हैं, फिर भगवान्‌की कृपासे उनको भक्तिकी विशेष बात मालूम हो जाय। उनके अनुयायियोंके उद्धारकी क्या स्थिति होती है—वे साथ नहीं छोड़ते या छोड़ देते हैं? यह समझानेकी कृपा करें।

उत्तर—वास्तवमें अनुयायी होना ही कठिन है। असली अनुयायी हो तो परमात्माकी प्राप्ति होनी ही चाहिये।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥ (गीता ३। २१)

श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है, समस्त मनुष्य-समुदाय उसीके अनुसार बरतने लग जाता है।

उसकी व्यवस्था उस साधकके भावपर निर्भर है, किसीकी गति क्रिया और भावपर निर्भर है। उसमें भी क्रियाकी अपेक्षा भाव बलवान् है। भाव नहीं हो तो चाहे भगवान्‌का संग ही क्यों न हो, लाभ नहीं होता। भावसे ही लाभ होता है, कानून यही है। किसी जगह अन्यथा घट जाय तो यह विशेष बात है।

प्रवचन—दिनांक ११। ४। १९४७, प्रात:काल ७.३० बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

प्रश्न—शिष्य बना ले तो शिष्यके उद्धारके लिये उनको लौटना पड़ता है, यह बात सुनी हुई है?

उत्तर—आना नहीं पड़ता, मुक्त क्या आये? शिष्य लायक नहीं हो, स्वीकार कर लिया तो उद्धार हो ही जाना चाहिये, यह बात मैं नहीं मानता। वह यही कहेगा कि भगवान्‌का भजन करो। आनेमें हेतु है, कामना, वासना, इच्छा—यह बात तो अज्ञानियोंमें घटती है। परमात्माकी प्राप्तिमें अहंकार अटकानेवाला है। आसक्ति, कामना, वासना ही जन्ममें हेतु होती है। वह कामना चाहे शिष्यमें हो, चाहे पुत्र, धन, स्त्री किसीमें हो।

प्रश्न—एक कहता है महात्माकी कृपासे कल्याण होगा और दूसरा कहता है महात्मा जैसा कहें वैसा साधन करनेसे कल्याण होगा तो दोनोंमें कौन बलवान् है?

उत्तर—दोनोंमें महात्माकी आज्ञापालनमें जो तत्पर है वह उच्च है। जिसका महात्मापर भाव होगा वह उनके कथनानुसार साधन करेगा।

'श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्'

तत्परता श्रद्धाको बतला रही है।

प्रश्न—एक आदमी साधन तो करता है पर कहता है कि कल्याण तो महात्माकी कृपासे होगा। दूसरा कहता है महात्माके कहनेसे साधन करता हूँ, साधनसे कल्याण होगा।

उत्तर—दूसरेमें अहंकार है कि मेरे साधनका प्रभाव है, पहलेवाला मानता है कि मेरे साधनसे मेरा उद्धार नहीं होगा, महात्माकी कृपासे उद्धार होगा। इसका साधन नीचा नहीं होगा। यदि साधन कम हो तो साधनमें विशेष तत्पर रहना चाहिये। अहंकार आया और कमी आयी। रहस्य समझना चाहिये, आदमी जितना रहस्य समझता है उतना दामी है। अपनेपर घटाकर बताता हूँ।

मेरे सिद्धान्तकी बातको जो मानता है, उसका पालन करता है, वह श्रेष्ठ है। सब बात भावकी है। मैं कहता हूँ, मैं फोटो नहीं उतराता, किसीने फोटो उतार लिया, यह बात मेरे किसी प्रेमीको मालूम हो गयी तो वह तुरन्त उसका विरोध करेगा। जो मेरे सिद्धान्तको मानता है, वह मेरे अनुकूल चलता है, वह मेरा अनुयायी है। जो मेरे तत्त्व-रहस्यको समझता है, वह मेरे सिद्धान्त-भावके अनुसार चलेगा। यदि विपरीत चलनेवाला होगा तो वह जैसे रुपयेके लिये धोखा देता है, वैसे यहाँ अध्यात्मविषयमें धोखा देनेवाला है। मैं जिस कामसे सहमत हूँ, उसको जो काममें लाता है, उसका लाभ है और जो अपने मनके भावके अनुसार व्यवहार करे वह नुकसानमें रहता है। मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा—ये तो स्वाभाविक रहते हैं। जो अपना कल्याण चाहता है उसे इनका विरोध करना चाहिये। जितने गुरु, महंत, महात्मा, अवतार आदि बने बैठे हैं, वहाँ पाँव पुजानेकी, धूल, चरणामृत देनेकी प्रथा हिन्दुस्तानमें बहुत है, उससे कल्याण नहीं होता। कल्याण करनेवाली प्रथा तो '**अमानी मानदः**' वाली है। मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाको तो हृदयसे नहीं चाहे। यह लाभकी बात है। लोकदिखाऊ मान, बड़ाईका त्याग होगा तो वह धोखा है। जो हृदयसे काम होगा उसमें भूल नहीं होगी।

मुझे भगवान्‌के नाममें करामात दीखती है, इसीलिये मैं स्वयं नामजप करता हूँ और करनेके लिये दूसरोंसे कहता हूँ। नास्तिकोंको भगवान्‌के नाममें लाभ नहीं दीखता, इसलिये वे विरोध करते हैं। वे वास्तवमें अच्छी नीयतसे विरोध करते हैं। मेरे घरमें स्त्रियोंके मेरी जूठन खानेका और चरण-जल पीनेका काम पड़ा है, किन्तु उनका उद्धार नहीं हुआ। न तो साकार भगवान्‌के दर्शन हुए और न निराकार तत्त्वकी बात ही देखनेमें आती है, इसलिये मैं अपने व्यक्तिगत विषयमें विरोध करता हूँ।

प्रश्न—कोई व्यक्ति बोला कि आप महात्मा हैं?

उत्तर—आपकी बड़ी दया है। आप सबकी सिफारिश हो जाय तो मेरे तो लाभ ही है। जैसी तुम्हारी दृष्टि है, वैसी दृष्टि तुम्हारी ही हो, मेरी नहीं। मेरी हो तो मैं तो भगवान्‌से प्रार्थना करता हूँ कि मेरी न हो। दुनिया कहे उससे तो मेरे आपत्ति नहीं। मैं यदि ऐसा मानूँ तो मेरे लिये बहुत कठिनाई है। यह बात किसीमें आ जाय तो यह लांछन है। दुनिया कहने लगे कि यह महात्मा है तो वह यह न समझे कि मैं महात्मा हूँ। अपनेको सबसे श्रेष्ठ माननेका भाव पतन करनेवाला है। यह शिक्षा तो रात-दिन मिल रही है कि सारी दुनिया मान चाह रही है। स्वार्थसिद्धिकी क्रिया तो सौमें निन्यानबेमें दीख रही है। साधकोंमें भी कोई एक होगा जो स्वार्थी नहीं है। दुनियाके संगसे स्वार्थकी बात स्वाभाविक ही आती है। कहीं स्वार्थके अड़ंगेमें नहीं आये, यह लाभकी बात है।

लौकिक स्वार्थ गिरानेवाला है और पारलौकिक स्वार्थ गिरानेवाला नहीं, पर अटकानेवाला है। लौकिक स्वार्थ यह है कि मैं तुमसे किसी प्रकारका स्वार्थ सिद्ध करूँ; रुपया, मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा, आराम, भोगका स्वार्थ सिद्ध करूँ तो पतन है। तुम यदि मेरेसे चाहो तो पतन है। परमार्थसे गिरोगे। इसमें छूट है यदि मित्रताका भाव है तो मेरे घर तुमने और तुम्हारे घर मैंने भोजन किया तो गिरानेवाला नहीं। यह व्यवहार प्रेमके कारण है।

पारमार्थिक स्वार्थ—जैसे मैंने कम्बलका उदाहरण दिया। आपने अपने ओढ़नेका कम्बल मेरे बिछानेके लिये या इस उद्देश्यसे दिया कि इससे हमारा कल्याण होगा।

हम परमात्मापर निर्भर हैं। उसके विधानमें प्रसन्नता है, पर कहीं-कहीं अपनी बुद्धि लगा देनेके कारण विलम्ब होता है। परमात्मा जो कर रहे हैं, ठीक कर रहे हैं, यह निष्काम निर्भरता

है। सकाम निर्भरता यह है—परमात्मा जो कर रहे हैं उसमें संतोष नहीं, हम अधिक चाहते हैं। दो बातें हैं—एक साधन और दूसरा साधनका फल। साधनकी चेष्टामें कमी नहीं करे। साधनके फलमें असंतोष नहीं करे। भगवान् जो कुछ कर रहे हैं, वह बढ़ाकर कर रहे हैं। अपना साधन तो बहुत कम है। यह बात होनी चाहिये। अपना व्यवहार नीचा हो रहा है। फलमें असंतोष है वहाँ भगवान्‌के कर्तव्यपर विचार है। वहाँ अपनी नासमझी है। भगवान्‌की हमारे ऊपर इतनी दया है कि हम उतने पात्र नहीं हैं। उनकी दयाकी कमी नहीं है, फिर भी दयाकी कमी कह दें तो भगवान् नाराज नहीं होते। साधनमें भगवान्‌से मदद माँगे तो माँग सकते हैं, न्याय है। आपमें प्रेम हो, श्रद्धा हो—यह माँग भगवान्‌के सामने पेश करें, यह शुद्ध माँग है। यह तो क्रियाकी माँग है। अपनेमें कमीकी पूर्तिकी माँग है। अपनेमें प्रेमकी कमी है इसलिये भगवान्‌से माँगते हैं। इस माँगके लिये मैं तो भगवान्‌से प्रार्थना करनेके लिये कहता हूँ। क्रिया, जप, तपकी कमीकी पूर्तिमें भगवान्‌से प्रार्थना करें तो कोई आपत्ति नहीं। मुक्ति तो बिना चाहे भगवान् दे देते हैं। पर तू मेरा भजन-ध्यान किया कर—यह नहीं कहते। भगवान्‌से भोग तो माँगे नहीं। मोक्ष भी नहीं माँगे, यद्यपि मोक्ष माँगे तो दोष नहीं। भजन, ध्यान, सत्संग, श्रद्धा, प्रेम—ये माँगनेकी कहता हूँ, माँगनी चाहिये। यह चीज ऐसी है कि भगवान् स्वतः नहीं देते। विरोध करनेपर भी मुक्ति तो देनेके लिये भगवान् तैयार हैं। भगवान्‌से भजन-ध्यान ही माँगें। सुतीक्ष्णने कहा—आपने जो दिया वह तो खुशीसे स्वीकार है पर मैं तो आपका ध्यान चाहता हूँ—वह दीजिये। भजन, ध्यानकी कमी है तो माँग ले और भजन, ध्यान होता है तो भी कायम रखनेके लिये माँग ले। वसिष्ठजीने माँगा था—

नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु॥

प्रह्लादजीने माँगा था—

या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु॥

(वि० पु० १। २०। १९)

अविवेकी पुरुषोंकी विषयोंमें जैसी अविचल प्रीति होती है वैसे ही आपका स्मरण करते हुए आपकी प्रीति मेरे हृदयसे कभी दूर न हो।

माँगनेकी इच्छा हो तो उनसे सीखे कि माँगनेकी इच्छाका भी नाश कर दो। ईश्वरसे साधन माँगनेकी बात कही जाय तो बाधा नहीं। फल नहीं माँगे। महात्माके संगका फल साधन नहीं, महात्मा होना है। महापुरुषकी इतनी दया है कि हम जितने पात्र नहीं, उतना दे देते हैं। फिर भी उनसे ज्यादा माँगना उन्हें तंग करना है। तंग नहीं करना अच्छा है। अच्छे पुरुषोंको फलके विषयमें कहनेकी आवश्यकता नहीं है। साधनके लिये कहें तो आपत्ति नहीं है। हमें पात्र बननेकी आवश्यकता है। भगवान् और महात्मासे कहें कि श्रद्धा-प्रेम हो तो वह चेष्टा करते हैं। महात्मामें श्रद्धा-प्रेमसे जो चीज मिले वह महात्मासे नहीं माँगे। महात्मासे भी जो लेना है वह भजन साधनके लिये लेना है, उनसे मुक्ति नहीं चाहे। तुम अपना साधन माँगो, इसे ही फल मान लो तो मान सकते हो। यह महात्मासे माँगे कि भगवान्‌में प्रेम कैसे हो? महात्मासे प्रेम इसलिये माँगे, क्योंकि महात्माका प्रेम भगवान्‌में होता है। मुक्तिका स्वार्थ परम स्वार्थ है।

‘मुक्ति निरादर भगति लुभाने’

यह ज्यादा मूल्यवान् है। हमें इसीकी चेष्टा करनी चाहिये।

यह मेरा सिद्धान्त है कि वास्तवमें महात्मा बनना चाहिये, कहना नहीं चाहिये।

जो महात्मामें श्रद्धा-प्रेम करते हैं, वह इसलिये करते हैं कि ईश्वरमें श्रद्धा-प्रेम हो। ईश्वरकी प्राप्तिके लिये, साधनकी प्राप्तिके लिये महात्मामें प्रेम है, वह भगवान्‌में ही है। एक आदमी रुपयोंके लिये मेरेसे प्रेम करता है तो वह प्रेम रुपयोंके लिये है। दूसरा भगवान्‌के लिये प्रेम करता है तो वह प्रेम भगवान्‌में है और जो मेरे लिये ही प्रेम करता है वह मेरे लिये प्रेम है, अतएव हमें भगवान्‌से मिलनेके लिये महात्मासे प्रेम करना चाहिये, वह प्रेम भगवान्‌के लिये ही है।

एक धनी है, उसके पास खूब रुपया है। वह रुपया कमानेकी युक्ति भी जानता है। उससे हम खुशामद और प्रेम करते हैं। वैसे ही महात्मासे भगवान्‌के भजन-ध्यानके लिये प्रेम करें तो यह श्रेष्ठ है। असली बात यही है। भक्त महात्मा बननेकी चीज है, कहलानेकी नहीं। कहलानेसे खर्च होता है, विलम्ब होता है। कोई मान-बड़ाईसे प्रसन्न हो गया तो उसके उत्तम कर्मका उतना फल नष्ट हो गया। अच्छे कर्मका फल सुख है। मान, बड़ाई, प्रतिष्ठासे सुख मिल गया, उतना अच्छा कर्म समाप्त हो गया। मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा आकर प्राप्त हों और उनका त्याग करो तो उसकी प्रशंसा है। जैसे किसीको दहेज मिलता है, उसका त्याग करे, यह महिमाकी बात है। मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा मिले ही नहीं तो त्याग क्या हुआ? कहीं निन्दा हो गयी, खानेको नहीं मिला तो यह त्याग कहाँ है। प्राप्त हो उसका त्याग है तो कल्याण है। हर एक भाईको हर एक बातमें त्याग सीखना चाहिये। त्यागमें कठिनाई, परिश्रम और तितिक्षा है। क्षमा, सहनशक्ति आदि गुण स्वतः ही उसमें आ जाते हैं।

अब सार बात कही जाती है। समझमें आ जाय तो बहुत लाभ

हो सकता है। बहुत ज्यादा लाभ तो परमात्माकी प्राप्ति है। यह कसौटी है कि जो बात कही जाय वह धारण हो जाय तो समझमें आयी। धारण नहीं हुई तो लाभवाली बात समझमें नहीं आयी। हर एक बातमें खयाल करना चाहिये। क्रियासे भाव बलवान् है, अतएव जितनी क्रिया है, उनमें भाव तेज करनेकी जरूरत है। गंगा-स्नान करते समय यह भाव करे कि इनके दर्शन, स्पर्शमात्रसे मनुष्यका पाप नष्ट हो जाता है, फिर स्नान-पानसे कल्याण हो जाय, इसमें कहना ही क्या है। हमें लाभ नहीं हुआ, उसमें हमारी श्रद्धाकी कमी है, गंगाकी कमी नहीं है। शास्त्रोंमें गंगाकी महिमा है, उसपर हमारा विश्वास नहीं, इसलिये लाभ नहीं है। हम गंगाजल पी रहे हैं तो भाव करें कि अन्तःकरणमें जो पाप हैं, वे सब पाप धुल रहे हैं, फिर ऐसा अनुभव होने लगता है। सूर्यभगवान् उदय हुए, रोज अर्घ्य देते हैं। यह भाव करे कि ये साक्षात् भगवान् हैं, उनको जलांजलि दे रहे हैं, उनसे सुख, शान्ति मिल रही है। यह माने, प्रतीत नहीं हो तो भी माने, यह भाव बड़ा अच्छा है। इसी प्रकार गीताके श्लोकका पाठ करते हैं। एक-एक श्लोककी इतनी शक्ति है कि लाखों-करोड़ोंका उद्धार हो सकता है। लाखोंका उद्धार हो चुका और हो रहा है। इस प्रकार श्लोकका प्रभाव समझकर श्लोकका, अर्थका पाठ करे तो बहुत ज्यादा लाभ है। श्लोकके भावको अपने जितना समझते हैं, उससे बहुत ज्यादा उस श्लोकमें भाव है।

भाव बहुत ऊँचे दर्जेकी चीज है। भावसे सूर्यको अर्घ्य दें तो बड़ा लाभ है। इसी प्रकार किसीकी सेवा करे तो ऐसे भावसे करे। सत्संगकी बातोंको आदरसे सुनोगे तो वे धारण हो जायँगी, अन्यथा विशेष लाभ नहीं है। यदि सत्संगकी बातें कहानीके समान सुनी तो विशेष लाभ नहीं होगा। गीता, रामायण, सत्संगकी बातें आदरसे सुने, सुनी तो धारण हुई, उस धारणसे अधिक लाभ है। भगवान्के

नामका जप कल्याण करनेवाला है। पापोंका नाश करनेवाला और मुक्तिका देनेवाला है, बहुत उच्चकोटिकी चीज है। नामजपके समय नामीकी स्मृति हो जाती है और मनसे भगवान्‌के नामको याद करके मुग्ध होवे, रोमांचित होवे, चित्त प्रफुल्लित हो जाय, फिर नामका प्रभाव समझे तो नाम छूटता नहीं। यह बात समझमें आ जाय कि भगवान्‌के भजनके समान कोई चीज नहीं। भगवान्‌का भजन अमृतसे बढ़कर है। भजन भगवान्‌से भिन्न नहीं। भगवान्‌का भजन करते समय स्वरूपका ध्यान करते हुए करे। निष्कामभावसे कर्तव्य समझकर करे।

महात्माका संग निष्कामभावसे कर्तव्य समझकर करे। मान-बड़ाईका स्वार्थ नहीं रहे। कोई भी काम है उच्चभावसे करे तो विशेष लाभ है, अन्यथा साधारण लाभ है। वाणीसे, युक्तिसे कहनेसे किसीको अच्छी मालूम पड़ती है, पर धारण नहीं हो तो अच्छा माननेमें कमी है। युक्तियोंसे, शास्त्रके अनुसार लोगोंके कथनानुसार जिनको हम बुरा समझते हैं, उनको नहीं छोड़ें तो वास्तवमें उनको बुरा नहीं समझा।

ये भावकी बातें कहीं। उनके अनुसार व्यवहार हो जाय तो यह माना जायगा कि हम इन बातोंको समझ गये। गीतामें दैवी और आसुरी सम्पदाके लक्षण आये तो भगवान्‌ने आसुरी सम्पदाके लक्षण त्यागनेके लिये और दैवी सम्पदाके लक्षण ग्रहण करनेके लिये बतलाया है। दैवी सम्पदा धारण करनेकी चीज है, बड़ी अच्छी चीज है। इससे बढ़कर यह है कि अपने यह समझमें आयी तो इसको धारण करनेसे वंचित ही कैसे रह सकते हैं। वह धारण हो सकती है और आसुरी सम्पत्तिकी चीजें घृणित, बुरी और त्याज्य हैं। ये प्रत्यक्ष खराब हैं तो हमारेसे कैसे हो सकती हैं। यह मान्यता अच्छी है। संसारमें जो कुछ है वह भाव है। भावसे आदमी लाभ उठा सकता है। भाव परिवर्तनसे वही

क्रिया ऊँची-नीची हो सकती है। हृदय अपने पास है। भाव हम कर सकते हैं। क्रिया हम कर ही रहे हैं, केवल भाव बदलनेकी आवश्यकता है। हमें अभी जो लाभ हो रहा है, उससे बहुत ज्यादा लाभ हो सकता है। शंकराचार्यजीने कहा है—

भगवद्गीता किञ्चिदधीता गङ्गाजललवकणिका पीता।
सकृदपि यस्य मुरारिसमर्चा तस्य यमः किं कुरुते चर्चाम्॥

जिसने भगवद्गीताको कुछ भी पढ़ा है, गंगाजलकी जिसने एक बूँद भी पी है, एक बार भी जिसने भगवान् कृष्णचन्द्रका अर्चन किया है, उसकी यमराज क्या चर्चा कर सकता है?

थोड़े-से अभ्यासकी इतनी महिमा है तो वह यदि सारी पढ़ी जाय तो कितने आनन्दकी बात है। हमें गीता मिल रही है, परमात्माकी हमारे ऊपर कितनी दया है? मनुष्यका शरीर मिला, सनातन धर्ममें जन्म, गीता सदृश पुस्तक मिली, फिर भाव नहीं तो क्या करे। भाव साक्षात् कल्याण करनेवाला है। इस तरहकी चीजके रहते कल्याणसे वंचित रहें तो दुर्भाग्यकी बात है। जो भगवान्‌की दयासे लाभ नहीं उठाता तो भगवान्‌का क्या दोष है। गीताके एक श्लोकमें इतना भाव है कि उसको स्वयं धारण करे तो स्वयंका कल्याण हो सकता है। वह फिर दूसरेका भी कल्याण कर सकता है। गीतामें श्रद्धा होगी तो गीताकी पुस्तक, भाव, उपदेश, गीता जाननेवाला पुरुष सबका आदर करेगा। गीता जन्म-मरणरूपी रोगका नाश करनेवाली परम औषधि है। गीताका श्लोक पढ़ना, अर्थ पढ़ना, उसके भावके अनुसार आचरण करनेसे लाभ है। गौकी सेवा करनेसे दूध कायम रहेगा, इसी प्रकार गीताका सेवन करेगा तो लाभ है। वह गाय तो दूध देती है और गीता अमृत देती है, जिससे अमर हो जाता है, कल्याण हो जाता है। भावकी प्रधानता है। भगवान्‌के नामका जप करें तो नामीको याद करते हुए

करें। नामी याद आते ही लीला-चरित्र याद आ जाते हैं। चरित्रके साथ गुण प्रभाव लगे हुए हैं, वे याद आ गये। यह नाम-जप बड़ा लाभ करनेवाला है। नहीं करनेकी अपेक्षा हम जो नाम-जप कर रहे हैं वह ठीक है। भावसे ज्यादा लाभ है।

महात्मा पुरुषके पास दर्शन करने जायँ तो अच्छे भावसे जायँ। महात्मा ज्ञानके पुंज हैं, ज्ञानके सूर्य हैं। उनके जितने नजदीक जायें मानो हम उतने ज्ञानके पुंजमें चले गये। दर्शन किये तो मानो ज्ञानके पुंजका ही दर्शन हुआ। फिर वार्तालाप हुआ तो महात्मा इन्द्र, बृहस्पति और ब्रह्मासे भी बढ़कर हैं—ऐसा भाव करे, मानो शंकरजीसे मिलने जा रहे हैं। महात्मा तो परमात्माका रूप हैं। पहले धारणा करे, फिर प्रतीति होने लगे, फिर अनुभव होने लगे तो बड़ा लाभ है। अन्तःकरण हमारे पास है, भाव हमें करना है, फिर लाभ-ही-लाभ है। यज्ञ, दान, तपको उच्चभावसे करे तो बहुत ज्यादा मूल्यवान् है। तीर्थमें यज्ञ, दान, तप किया हुआ मूल्यवान् है, उससे लाखों-करोड़ों गुणा मूल्यवान् भावसे किया हुआ होता है। काशी आदि तीर्थोंमें पापीको दण्ड भुगताकर उसकी मुक्ति होती है, किन्तु भगवद्भावको याद करते हुए चाहे एक नीचके भी घरमें मरे तो कल्याण है।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥ (गीता ८।५)

जो पुरुष अन्तकालमें भी मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीरको त्याग कर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूपको प्राप्त होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

भाव जैसा मूल्यवान् है, वैसा तीर्थ नहीं है। वह भाव कर्ताके अधीन है, फिर कमी क्यों रहनी चाहिये। विचार करके देखे तो अपनी मूर्खता है। जो अपने हाथका काम है उसमें हम नुकसानमें क्यों रहें?

❑❑

प्रश्नोत्तर

सगुण साकार, सगुण निराकार और निर्गुण निराकारका परमात्माके नामपर जो ध्यान किया जाता है, वह वास्तवमें परमात्माका चिन्तन है। परमात्माके नामपर है, उससे बढ़कर और क्या कर सकते हैं? उससे भी परमात्माकी प्राप्ति होगी। जैसे चन्द्रमाके दर्शनकी इच्छा है तो चन्द्रमाका दर्शन होगा। एक भोला आदमी है, किसी प्रकार जी नहीं चुराता, जितनी बुद्धि है उतनी लगानेको तैयार है, उससे मालिक नाराज नहीं होता। उसका कसूर तब है, जब उसके पास बुद्धि-बल होते हुए उसका प्रयोग नहीं करता। ज्ञानके मार्गमें समझकी प्रधानता है और भक्तिके मार्गमें प्रेमकी। जप, ध्यान और सत्संग—तीनों लाभकी चीजें हैं।

प्रश्न—साधन तेज करना चाहिये या इच्छा बढ़ानी चाहिये?

उत्तर—साधन तेज बढ़ाना चाहिये।

प्रश्न—लालसासे ही साधन तेज बढ़ता है?

उत्तर—अपने क्या आपत्ति है, यह निर्णय कर ले कि मुझे तो यही करना है। ध्येय कह दो, उद्देश्य कह दो, एक ही बात है।

प्रश्न—एक श्रद्धाकी माँग है और दूसरी प्रेमकी—इन दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है?

उत्तर—चिन्तन ठीक है। श्रद्धा होगी तो चिन्तन स्वतः ही होगा। अधिकांशमें देख लो जहाँ भगवान्ने अनन्यचिन्तन कहा, वहाँ श्रद्धा-प्रेम नहीं लाये। श्रद्धा-प्रेम होगा तो अनन्यचिन्तन स्वतः ही होगा।

प्रश्न—मन कैसे रुके?

उत्तर—अभ्यास और वैराग्यसे।

प्रश्न—भगवान्का चिन्तन कैसे हो?

उत्तर—आवश्यकता समझनेसे चिन्तन होगा।

प्रवचन—दिनांक ११। ४। १९४७, सायंकाल ६.१५ बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

प्रश्न—आवश्यकता कैसे समझे?

उत्तर—जिन्होंने आवश्यकता समझी उनके संगसे।

प्रश्न—ऐसेकी परीक्षा कैसे हो?

उत्तर—जिनके दर्शन, स्पर्श, भाषणसे भगवान्‌का चिन्तन ज्यादा हो।

प्रश्न—वास्तवमें वह महात्मा नहीं हो और उसके संगसे चिन्तन हो तो क्या समझे?

उत्तर—वह चाहे महात्मा नहीं हो, उसके संगसे चिन्तन होता है तो उसको तो लाभ हो गया।

प्रश्न—महापुरुषके द्वारा क्या-क्या लाभ होता है, यह तो साधकको पता होना चाहिये।

उत्तर—जो अच्छे पुरुष हैं, उनमें यह बात नहीं रहती कि मैं महापुरुष हूँ। महापुरुषकी वह महिमा कहता है तो खुदके अनुभवसे तथा शास्त्रोंके आधारपर कहता है।

प्रश्न—दोके सिवाय तीसरी बात भी पैदा होती है?

उत्तर—दूसरे श्रद्धा-प्रेम रखते हैं, उनके कारणसे उनके हृदयमें जो बातें स्फुरित होती हैं, वे भी कही जा सकती हैं।

प्रश्न—महापुरुषोंसे जो लाभ होता है उसके सिवाय फिर भी भगवान् और महापुरुषोंसे माँगता है तो भगवान् नाराज नहीं होते। महात्मा-भगवान्‌की कृपासे, सत्संगसे जो लाभ होता है वह ज्यादा होता है। साधकको अनुभव नहीं होता, इसीलिये माँगता है, फल होता है तो मालूम क्यों नहीं होता कि लाभ होता है?

उत्तर—मालूम होनेपर इसलिये माँगते हैं कि माँगनेपर मिलता है तो क्यों न माँगें? चार आनेमें हीरा मिले तो क्यों नहीं लें? मुफ्तमें मुक्ति मिले तो क्यों नहीं माँगें?

प्रश्न—साधनकी अपेक्षा माँगनेपर अधिक मिलता है—माँगना ही साधन समझ लिया।

उत्तर—बीमार है उसको लाभ होता है, वैद्य आराम समझता है, रोगीको अन्दरूनी लाभ होता है। बाहरका दर्द, पीड़ा शान्त नहीं हो तो उसको अनुभव नहीं होता। पर वैद्य तो जान रहा है कि लाभ हो रहा है। मजदूरको मजदूरी देनेवाला दयालु होनेसे उसकी दृष्टिमें मजदूरी बहुत ज्यादा नहीं है। है तो बहुत ज्यादा पर महात्माकी दृष्टि यह नहीं होती है कि मैंने पाई भी दी। वह यह समझता है कि यह कल्याण चाहता है, जबतक उसका कल्याण नहीं होता तबतक उसे कुछ नहीं मिला।

गोपियाँ भगवान्‌को आत्माके कल्याणके लिये भजती थीं तो भगवान् अपनेको ऋणी ही समझते थे। वैसे ही महात्माके पास उपासक श्रद्धा-प्रेम करनेवाले आते हैं तो वे अपनेको उनका ऋणी ही मानते हैं, अन्यथा उनका उदार भाव ही क्या है। महात्मा पुरुष यह समझते हैं कि श्रद्धालु अपनेको नीचा और मुझे ऊँचा समझकर अपने कल्याणकी इच्छा रखता है। महात्मा यह देखता है कि इसमें और मेरेमें कोई भेद नहीं। शरीर तो पांचभौतिक है और आत्मा सबका एक है, फिर भी यह मुझे बड़ा मानता है तो मैं महात्मा कहाँ? महात्मा तो यह है। श्रेष्ठ माननेवाला अच्छा या समान माननेवाला अच्छा। महात्माके लिये यह मान्यता अच्छी है। किसीको श्रेष्ठ मानना अच्छा है, कोई भी हो चाहे साधक हो चाहे महात्मा, दूसरेको अपनेसे अच्छा माने। साधकमें बहुत अज्ञान है। अज्ञानको मिटानेका उपाय है कि अज्ञानको अज्ञान समझे, इसीमें साधकका लाभ है।

वास्तवमें महात्माका मानना कुछ नहीं। महात्माका मानना महात्मा जाने। वृत्तियोंसे, भावसे यह बात कही जाती है कि ऐसी मान्यता प्रशंसाके लायक है। कोई आदमी आत्माके कल्याणके उद्देश्यसे महात्माके पास श्रद्धा-प्रेमसे जाय। जिज्ञासुकी दृष्टि है कि महात्माके संगसे, दर्शनसे लाभ होता है। महात्माको यह

देखना चाहिये कि यह तो तुम्हारे ऊपर निर्भर है, श्रद्धा-प्रेम करता है तो वह महात्मा उसका तबतक ऋणी रहता है, जबतक उसको परमात्माकी प्राप्ति नहीं हो जाय। महात्माके पास है तो नहीं, जो कुछ है सब भगवान्‌का ही है। वास्तवमें वह महात्मा होगा तो भगवान् चुकायेंगे। भगवान्‌के निमित्त किसीको महात्मा मान लिया तो उसका ऋण भी भगवान् चुकाते हैं। वास्तवमें भगवान्‌के ही लिये किसीमें श्रद्धा करता है तो भगवान्‌का दायित्व है। कोई अच्छी नीयतसे संग करता है, वह फन्देमें पड़ जाय तो उसकी रक्षा भगवान् ही करते हैं। महात्माको तो वह पहचानता नहीं और परमात्माकी प्राप्तिकी इच्छा है। जिसको वह अपनी बुद्धिसे महात्मा मानता है, उस महात्मामें पोल दीखे तो वहाँ भगवान्‌का कर्तव्य है कि वे बचायें। श्रद्धा-प्रेमका फल तो होना ही चाहिये। वास्तवमें अपनी शक्तिके अनुसार भजन, साधन करे, बात माननेको तैयार होवे तो भगवान्‌पर ऋण होता है। कोई आदमी शक्ति रहते भजन नहीं करे तो वह आलसी है।

प्रश्न—शक्तिका ज्ञान नहीं हो या भूलसे नहीं करता?

उत्तर—अपनेमें शक्ति नहीं है यह बात माने ही नहीं। हमारेसे चेष्टा कम हो तो हमारेमें कमकसपना है। यह आलस्य है। अपनेमें कमी मानता रहे। अपनी आत्माका कल्याण यदि करना है तो कभी ऐसा नहीं माने कि मैं अपनी शक्तिके अनुसार करता हूँ। मन पाजी है, वह धोखा दे रहा है। साधन करनेवालेको ऐसा कभी नहीं मानना चाहिये कि मैं अपनी शक्तिके अनुसार साधन करता हूँ और मेरी चेष्टामें कमी नहीं है। हमारे सिरपर भगवान्‌का हाथ है, मनमें कमजोरी नहीं लानी चाहिये। अपने ऊपर भगवान्‌की पूरी मदद है, इस बातको खयालमें रखकर उत्साहसे काम करता रहे।

काम जो करे उत्तरोत्तर खूब जोरसे करे। एक छोटा बच्चा है,

सीढ़ियाँ चढ़ रहा है, पीछे देखता है कि माँ सहारा देगी। जब बालक गिरने लगता है तो माता उसको सँभालकर एक सीढ़ी और आगे चढ़ा देती है। वैसे ही भगवान् भी सहायता देते हैं।

उस अवस्थामें ऐसा नहीं हो तो जैसे भरतजी महाराज भगवान् रामके लिये विलाप करते हैं कि भगवान् क्यों नहीं आये। क्या कारण है? वैसे विलाप करे। रोना नहीं आये या रोना आये—दोनों बातें हैं। मनमें वीरता रखे कि भगवान्का हमारे ऊपर हाथ है, बहुत जोर है। निर्भय होकर तत्परतासे चले। भगवान्की दया है, खूब बल है, खूब सहायता है, इसलिये निर्भय होकर चले। हमारेमें चारों तरफसे कमी है। सिंहावलोकन करके विचार करे कि क्या कमी है। फिर अपने स्वभावके दोषको देखकर भगवान्के सहारे चले। भक्तिके मार्गमें जो मदद भगवान्से मिले, वही मदद ज्ञानके मार्गमें सत्संगसे मिलती है।

शरणागतिके विषयमें भगवान्ने गीतामें बतलाया है—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥ (गीता ९।३२)

हे अर्जुन! स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि—चाण्डालादि जो कोई भी हों, वे भी मेरी शरण होकर परमगतिको ही प्राप्त होते हैं।

भगवान्की शरणके अधिकारी सब कोई हैं। शरणका स्वरूप इस प्रकार बतलाते हैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥ (गीता ९।३४)

मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो, मुझको प्रणाम कर। इस प्रकार आत्माको मुझमें नियुक्त करके मेरे परायण होकर तू मुझको ही प्राप्त होगा।

भगवान्में मन लगाना यह शरणका प्रधान अंग है। भगवान्का भजन करना दूसरा, पूजा तीसरा और नमस्कार चौथा अंग है।

इन चारों बातोंमेंसे एकको भी धारण कर ले तो कल्याण हो जाय। यह बात शास्त्रसंगत तथा युक्तिसंगत है।

भगवान्‌में मन लगानेसे मुक्ति हो जाती है, यह बात भगवान्‌ने जगह-जगह बतलायी है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥ (गीता ८।१४)

हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥ (गीता ९।२२)

जो अनन्यप्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका योग-क्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।

केवल भगवान्‌की भक्तिसे भी उद्धार हो जाता है।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥ (गीता ९।३१)

वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।

पूजासे—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥ (गीता ९।२६)

जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेमसे पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुणरूपसे प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ।

केवल नमस्कारसे भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। गीतामें यह बात नहीं बतलायी, दूसरे शास्त्रोंमें बतलाया है। चारोंमेंसे एकसे भी भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है।

हमारे लिये जो कुछ सुख-दुःख आकर प्राप्त हो जाता है, उसमें हरवक्त सन्तुष्ट रहे। भगवान् जो कुछ करें, उसको भगवान्‌का विधान मानकर प्रसन्न होवे। यह शरण होना, निर्भर होना है।

भगवान्‌के नामको पकड़े रहना, हरवक्त स्वरूप और नामको पकड़े रहना शरणका प्रधान अंग है। पकड़ लिया तो छोड़े नहीं।

भगवान्‌की आज्ञाका पालन करना, जैसे अर्जुनने कहा— **'करिष्ये वचनं तव'** आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।

शरणागतिका तत्त्व समझना चाहिये। प्रधान बात है भगवान्‌पर श्रद्धा, वह होनेसे सब व्यवस्था बैठ सकती है। शरणके योग्य भगवान् हैं और कोई नहीं। यह बात समझनेकी है कि भगवान्‌के शरण होनेपर प्रयत्न क्यों करें? मतलब है कि जो मुखसे कहता है कि मैं शरण हूँ तो भजन-साधन भगवान् करवा लेंगे और आत्माका कल्याण भगवान् कर देंगे। यदि वह शरणागतिके तत्त्वको समझ लेता है तो ठीक है और नहीं तो यह समझनेमें मन धोखा तो नहीं दे रहा है। वास्तवमें शरणागति बड़ी महत्त्वकी चीज है।

एक आदमी अत्याचार कर रहा है, उसको हम सहें तो समझना चाहिये कि हमारेमें बल नहीं है, यदि हम यह समझें कि अपराध माफ कर दिया तो मनका धोखा है। उसी प्रकार जो भगवान्‌के शरण हो गया, उसका साधन तेज होना चाहिये। साधन तेज नहीं हो तो उसके समझकी कमी है। संसारमें बहुत लोग निकम्मे और आलसी हैं, वे झूठी शरण मानकर रुक जाते हैं और साधनमें रुकावट आ जाती है। इस विषयमें अनुभवकी एक बात खयालमें आयी।

कई आदमियोंने ऐसी धारणा कर ली और उनकी धारणा गलत निकली। ऐसी बात कर ली कि तुम्हारा संग कर लिया, तुम हमारे

मित्र हो तो हमारा कल्याण हो गया। आगे चलकर उनका साधन कमजोर हो गया। मैंने पूछा—तुम्हारा साधन कैसे चलता है? उन्होंने उत्तर दिया, आजकल कम होता है। क्यों? कल्याण होनेमें तो आपका संग आधार है। यह समझना चाहिये कि इससे कोई लाभ नहीं होगा, बल्कि पतनकी सम्भावना है। इस प्रकारकी शरण शरण नहीं है, यह धोखा है। यह बात मैंने लोगोंमें बीती हुई देखी है। भगवान्‌का सच्चा आश्रय हो तो उसके कल्याणमें शंका नहीं। सच्ची शरण होगा तो उसके लक्षण दूसरे ही हो जायँगे। केवल मुँहसे कहनेसे काम नहीं चलता। भगवान्‌ने यहाँतक कह दिया—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥

(वा० रा०, युद्धकाण्ड १८। ३३)

जो एक बार भी शरणमें आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कहकर मुझसे रक्षाकी प्रार्थना करता है, उसे मैं समस्त प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ। यह मेरा सदाके लिये व्रत है।

यह भगवान्‌के विषयकी बात है। हमें भगवान्‌को ठगना नहीं है। जब साधन कुछ नहीं है तो भगवान्‌के कहनेका अभिप्राय यह है कि यह बात मान लेनी चाहिये कि जो केवल वचनमात्रसे ही नहीं अपितु सच्चे दिलसे मेरा बनना चाहता है, उसको मैं अभयदान दे देता हूँ। इसका तात्पर्य समझना चाहिये। जो भगवान्‌के शरण हो जाता है, भगवान् उसकी परीक्षा लेते हैं, उसको चेतावनी देते हैं कि वह कथनमात्रसे 'मैं शरण हूँ' ऐसा कहता है। जो अपनेको निर्भय घोषित करता है और मौका पाकर भयभीत हो जाता है तो पोल खुल जाती है। भगवान् भी इसीलिये चेताते हैं, जो अपनेको निर्भय घोषित कर देता है, उसके लिये भयका मौका ला देते हैं। अर्जुन कहते हैं—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

(गीता २। ७)

कायरतारूप दोषसे उपहत हुए स्वभाववाला तथा धर्मके विषयमें मोहितचित्त हुआ मैं आपसे पूछता हूँ कि जो साधन निश्चित कल्याणकारक हो, वह मेरे लिये कहिये; क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिये आपके शरण हुए मुझको शिक्षा दीजिये।

धर्मके विषयमें मैं मूढ़चित्तवाला हूँ, मैं क्या करूँ। यह मालूम नहीं पड़ता, अतएव मेरे लिये जो कल्याणकारक हो वह मुझे कहें, मैं आपका शरणागत शिष्य हूँ। मुझे उपदेश दें। कितनी सरलतासे कहना है, किन्तु भगवान्‌ने उसको स्वीकार नहीं किया। अर्जुन जैसा कहता है वैसा नहीं करता। यदि ऐसी बात होती तो १८वें अध्यायमें—'**मामेकं शरणं व्रज**' ऐसा क्यों कहते? '**तमेव शरणं गच्छ**' इससे मालूम पड़ता है कि वह शरण नहीं है, इसीलिये शरण जानेको कहते हैं। यहाँ दूसरे अध्यायमें कहता है—

न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह॥ (गीता २। ९)

श्रीगोविन्दभगवान्‌से 'युद्ध नहीं करूँगा' यह स्पष्ट कहकर चुप हो गये।

इसपर भगवान् हँसते हैं, क्योंकि अर्जुन कहता है कि मैं शरण हूँ, किन्तु शरणकी बात इसमें नहीं घटती। कोई आदमी पंचायत कराये और कहे कि आप जो कुछ करें वह मंजूर है, परन्तु हमारा नाला इसी जगह गिरेगा। फैसला तुमने दे दिया अब क्या फैसला दें? अर्जुनने कहा—मैं युद्ध नहीं करूँगा, आप मुझे उपदेश दें। यह कैसी शरण है? एक बात यह है, जब हम भगवान्‌के शरण हो जायँगे तो भगवान् हमारेसे साधन भी करवा लेंगे। यदि आपको विश्वास है तो वे करवा लेंगे। यदि विश्वास नहीं तो मामला गड़बड़ है। शरण होकर प्रयत्न नहीं करें तो दोष

आयेगा। तात्पर्य यह है कि साधन हमारेसे भगवान् करवा रहे हैं, भगवान्‌की कृपासे हो रहा है। जो कुछ होगा वह भगवान्‌की कृपासे होगा, ऐसा मानना चाहिये। अभिमान नहीं लाना चाहिये।

यदि हमारा साधन तेज नहीं तो मान्यता, शरणागतिके भावमें कमी है। परीक्षा यह है कि क्या हमारा साधन ठीक है? इससे आदमीको फिर धोखा नहीं है। साधन नहीं देखे, कभी देखे तो सन्तोष नहीं करना चाहिये। शरणागतिमें कमी नहीं आयेगी। जो कुछ साधन बन रहा है वह भगवान्‌की दया है। जो नहीं बन रहा है उसमें हमारा प्रमाद कारण है। हमारेसे अच्छे काम हो रहे हैं वह भगवान् करवा रहे हैं। जहाँ बुराइयाँ हो रही हैं वहाँ अपने स्वभावका दोष है। भगवान्‌के कानूनके विरुद्ध हम चल रहे हैं उसमें हमारे स्वभावका ही दोष है। अर्जुनने प्रश्न किया—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥ (गीता ३। ३६)

हे कृष्ण! तो फिर यह मनुष्य स्वयं न चाहता हुआ भी बलात् लगाये हुएकी भाँति किससे प्रेरित होकर पापका आचरण करता है? भगवान्‌ने उत्तर दिया—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥ (गीता ३। ३७)

रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है, यह बहुत खानेवाला अर्थात् भोगोंसे कभी न अघानेवाला और बड़ा पापी है, इसको ही तू इस विषयमें वैरी जान।

हमें पापोंकी तरफ ले जानेवाला यह काम है, क्रोध है। जब हमारी बागडोर भगवान्‌के हाथमें है तो हमारेसे अच्छे काम ही होंगे। भगवान्‌की आज्ञाके विरुद्ध काम होंगे तो धोखा है। मामला गड़बड़ है। उसका सुधार करना चाहिये।

❑❑

भगवान्‌के गुण-प्रभावादिका अनुभव

प्रश्न—भगवान् सब जगह हैं, भगवान् मेरे साथ हैं, भगवान्‌का मेरे सिरपर हाथ है और भगवान् मुझसे करवा रहे हैं—ये चार प्रकारके साधन हैं, इनके लिये अधिकारी कौन है?

उत्तर—उपासना सभी अच्छी हैं, जिसमें जिसकी श्रद्धा, प्रीति, रुचि हो, वही उसका अधिकारी है। भगवान्‌का अपने सिरपर हाथ है, उनकी दया देख-देखकर प्रसन्न होना चाहिये। साधकके लिये यह ठीक है और भगवान् साथ-साथ चलते फिरते हैं, यह भगवान्‌का चिन्तन है, हर समय भगवान्‌को देखनेका तरीका है—'**वासुदेवः सर्वमिति**'। हमारेसे जो कुछ क्रिया हो रही है वह भगवान् ही करवा रहे हैं—यह भक्तिप्रधान कर्मयोग है। जो बात जिसके समझमें आये, वह उसके लिये ठीक है और निर्णयके लिये तो यह बात है—'**वासुदेवः सर्वमिति**'। यह भी कम बात नहीं कि भगवान् ही सब करवा रहे हैं। सगुणभगवान्‌का हमारे सिरपर हाथ है, यह दयाका विषय है और भगवान् हमारे साथ हैं, यह संयोगका साधन है, प्रेमका साधन है। इनमें उत्तम, मध्यम कुछ नहीं कहा जा सकता, जिसके जो समझमें आये उसके लिये वह ठीक है। एक कालमें भगवान्‌को व्यापकरूपसे देखना—सबमें भगवान् और सब भगवान् हैं यह देख रहा है। भगवान् करवा रहे हैं यह क्रियाप्रधान है। सगुण साकारका साधन यह है—भगवान्‌का हमारे सिरपर हाथ है। वहाँ निराकार-साकारका भेद नहीं है।

प्रश्न—भगवान्‌की कृपादृष्टिके साधनका क्रम क्या है? भगवान्‌की दया मानते-मानते अनुभवका क्रम क्या है?

उत्तर—दया, प्रेम गुण हैं। भगवान् गुणी हैं। गुणोंको याद करनेसे बहुत लाभ है, पर गुणीके सहित गुणोंको याद करे तो

प्रवचन—दिनांक १४। ४। १९४७, सायंकाल ६.३० बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

विशेष लाभ है। गुणीको हम जैसा समझते हैं, गुणके साथ-साथ उनके स्वरूपका, प्रभावका लक्ष्य रहे तो बहुत अच्छा है।

प्रश्न—क्रमसे दयाका अनुभव कैसे हो?

उत्तर—माताकी सब क्रिया बालकके हितकी है। किसीको बालक समझता है और किसीको नहीं समझता। वह बालक विरोध भी करता है, किन्तु माता उसके विरोधकी परवाह नहीं करती, माँसे बालकका अहित नहीं होता। बालक जैसे-जैसे माँके तत्त्वको समझता जायगा, उसके यह बात जँचती जायगी कि माँ अहित नहीं करेगी। माँ और भगवान्‌में अन्तर है। माँमें अविवेक है, स्वार्थ है और भगवान्‌की दया हेतुरहित है, निर्भ्रान्त है। माँका उदाहरण बहुत अच्छा है, पर भगवान्‌की दयामें विशेषता है। भगवान्‌का तात्त्विक ज्ञान समझमें आयेगा तो उसकी प्रसन्नता बढ़ती जायगी। पहले तो मामूली दया है। भगवान् हमको हवा, प्रकाश, जल देते हैं, यह भी दया है। ये भौतिक चीजें हैं। इसके आगे और दया है कि अनिष्टमें इष्ट ही हो। बादशाह और बीरबलकी कथा आती है, अंगुली कटी तो जान बच गयी। यह विशेष दया है। जीवनमें सांसारिक सुख मिलता है, यह भगवान्‌की दयासे मिलता है, यह मामूली दया है। भगवान् हमको सब दुःख-पापसे मुक्त कर रहे हैं, सद्‌गुण, सदाचारकी वर्षा कर रहे हैं। यह ऊँची बात है। पारमार्थिक उन्नति है। इससे भी ज्यादा ऊँचा उठे। उत्तम गुणोंमें प्रवेश करना, दुर्गुणोंसे हटाना—इससे भी ऊँचा उठे तो भगवान् क्या वस्तु हैं, इस बातका उसे अनुभव होने लगता है।

प्रश्न—यह अनुभव किस तरह होता है?

उत्तर—तत्त्व यह है कि उसको ज्ञान होने लग जाता है। भगवान् सगुण, निर्गुण एक हैं, इस निष्कर्षपर पहुँच जाता है। भगवान्‌का रहस्य समझने लग जाता है, तात्त्विक विषय समझने लग जाता है जो गुण प्रभावसे ऊँची चीज है।

प्रश्न—समझनेका स्वरूप क्या है?

उत्तर—जितनी सब चीजें हैं, तात्त्विक विचार कर रखा है कि

वे सब पार्थिव चीजें हैं। यहाँतकका तत्त्व समझे कि शरीर, कपड़ा पार्थिव है, उसी प्रकार आगे और विचार करे तो जड़ प्रकृतिमें ये सब विलीन हो जाते हैं। जैसे घटपट पृथ्वीमें मिल जायँ, उसी प्रकार आकाशादि सब प्रकृतिमें समाप्त हो जाते हैं, धातु प्रकृति बन जाता है। यह बात समझमें आनेपर सब प्रकृति है। जो जलका तत्त्व समझ जाता है कि जल, बादल, बूँदें, ओस सब जल है, इसी प्रकार परमात्माका तत्त्व समझमें आये तो वह परोक्ष ज्ञान है। यह बुद्धिके विवेकसे ज्ञान है। प्रत्यक्ष हो तो और भी विशेष ज्ञान हो जाता है। अपरोक्ष उससे बढ़कर है। परमात्माका विशेष ज्ञान हो गया तो परमात्मा छिप नहीं सकते। बर्फ, जल एक तत्त्व है। उसका तत्त्व समझ गये। परमात्माका तत्त्व समझ गये तो उससे परमात्मा छिप नहीं सकते।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥ (गीता ६। ३०)

जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥ (गीता १०। ४२)

अथवा हे अर्जुन! इस बहुत जाननेसे तेरा क्या प्रयोजन है। मैं इस सम्पूर्ण जगत्‌को अपनी योगशक्तिके एक अंशमात्रसे धारण करके स्थित हूँ।

सारे संसारमें परमात्मा हैं और परमात्मामें संसार है। यह बात पहले मान ले फिर अनुभव होता है। पहले परोक्ष होता है और फिर अपरोक्ष। उसका फल है—

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥ (गीता ६। ३१)

जो पुरुष एकीभावमें स्थित होकर सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे

स्थित मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेवको भजता है, वह योगी सब प्रकारसे बरतता हुआ भी मुझमें ही बरतता है।

परमात्माके साथ एकता है। ज्ञानके मार्गकी एकता स्वरूपसे, धातुसे एकता है। भक्तिकी एकता धातुसे, जातिसे एकता है, यह भी अपने मानते हैं। फिर यह अनुभव होता है। अनुभव हो जाय तो वहाँ इतना प्रेम है, वहाँ सारी क्रिया चेष्टा भगवान्‌में है। भगवान्‌को लेकर सारी क्रिया है, यह क्रीड़ा है। भक्तिके मार्गमें जिसे रास करना कह दो, लीला कह दो। भगवान्‌के परिकर भगवान्‌के साथ लीला करते हैं, यह कह दो। उस लीलाका अनुभव है उसे रसास्वाद कह दो, उसके बराबर कोई चीज नहीं है। उसका फल है परमात्माकी प्राप्ति।

'स योगी मयि वर्तते' यह प्राप्ति है। पहले उसमें रमण है, वह मनकी मान्यता-सी है, फिर परोक्ष अनुभव है, फिर फलरूप अनुभव है—यह प्राप्ति है।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।

यह आधा श्लोक साधनकालका है, परोक्षरूपसे देखना। यह फल है—**'तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति'** यह आधा श्लोक अपरोक्ष है और फल है। परमात्माका ज्यों-ज्यों ज्ञान होता जाय, त्यों-त्यों दया समझमें आती जायगी। ज्यों-ज्यों तत्त्व, रहस्य, समझमें आता जायगा, त्यों-त्यों प्रसन्नता, शान्ति बढ़ती जायगी और वास्तवमें प्राप्ति हो जायगी, फिर वह दया और आनन्दके सागरमें डूब जाता है।

प्रभावका ज्ञान—भगवान् एकने ही अनेक रूप धारण कर लिये, यह प्रभावका ज्ञान है।

रहस्यका ज्ञान—इस बातको कोई नहीं जानता। भगवान्‌के कहनेपर बलदेवजीको मालूम हुआ कि गोप ग्वाल, बछड़े सब एक भगवान् ही बने हुए हैं। उसको आगे जाकर प्रभाव दीखने लगता है, प्रतीत होने लगता है।

❑❑